सिद्धयोग

स्थापक:
गयोगेश्वर सन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

एक प्रति : रू. 20
द्विवार्षिक : रू. 320

ी सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 48, अंक : 10
जनवरी 2016

अमृत कण

अनागतविधाता च प्रत्युत्पन्नमतिस्तथा।
द्वावेतौ सुखमेधेते यद्भविष्यो विनश्यति।।

— चाणक्य सूत्र

वह महान् है, जो संकट की पूर्वकल्पना से ही अपने बचाव के सभी उपाय कर लेता है और जिसे विपत्तियों या दुःख के आगमन पर आत्मरक्षा का उपाय सूझ जाता है, ऐसा व्यक्ति दोनों ही दृष्टि से अपने सुख की वृद्धि करता है। किन्तु जो व्यक्ति भाग्य के वश में होकर चलता है या यह मानता है कि जो भाग्य में लिखा है वही होगा, उसका विनाश अवश्यंभावी है।

यथातथोपदेशेन कृतार्थः सत्त्वबुद्धिमान्।
आजीवमपि जिज्ञासुः परस्तत्र विमुह्यति।।

— अष्टावक्र गीता

सत्य बुद्धि वाला व्यक्ति जैसे-तैसे यानि थोड़े से उपदेश से भी कृतार्थ हो जाता है, जबकि असत्य बुद्धि वाला व्यक्ति आजीवन जिज्ञासा करके भी उसमें मोह को ही प्राप्त होता है।

पुराणमित्येव न साधुसर्वं न चापि सर्वं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्याऽन्यतरद्भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः।।

— कालीदास

कोई वस्तु प्राचीन होने से ही श्रेष्ठ नहीं होती और न कोई वस्तु नवीन (आधुनिक) होने से ही श्रेष्ठ होती है। विवेकयुक्त व्यक्ति ज्ञान से परीक्षा करके ही दोनों में से श्रेष्ठ को स्वीकार करते हैं, जबकि मूढ़ व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के विश्वास के अनुसार चलता है।

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्।।

अग्नि से तपायें जाने पर जैसे धातु का मल जल जाता है, उसी प्रकार प्राणवायु के निग्रह से इन्द्रियों के सारे दोष दग्ध हो जाते हैं।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

वर्ष : 48 अंक : 10

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं
यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।
तँह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं
मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये।।

(श्वेताश्वतरोपनिषद् 6/18)

जो परमेश्वर निश्चय ही सबसे पहले ब्रह्मा को उत्पन्न करता है और जो निश्चय ही उस ब्रह्मा को समस्त वेदों का ज्ञान प्रदान करता है। उस परमात्म ज्ञान विषयक बुद्धि को प्रकट करने वाले प्रसिद्ध देव परमेश्वर को मैं, मोक्ष की इच्छा वाला साधक शरणस्वरूप में ग्रहण करता हूँ।

जनवरी 2016

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवाई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक

डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :

समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	14
3.	नववर्ष 2016 के शुभावतरण पर त्रिभाषा–रचित–श्री द्वारका प्रसाद शर्मा	16
4.	श्रीमद्भागवत में योग परिचर्चा – डॉ. विजय सिंह	18
5.	मनवा के आँनगन में.....– डॉ. नमिता सिसौदिया	21
6.	योग–आसन	22
7.	योग और स्वास्थ्य – डॉ. जे.पी.शर्मा	24
8.	प्राणायम – अरोग्य और दीर्घजीवन – दिनेश चन्द शर्मा	29
9.	मन की गली में झाँक ले – विजय शर्मा	32
10.	योग कुण्डलिनी उपनिषद् के आधार पर	33
11.	योग माया– जनक कुलश्रेष्ठ	35
12.	स्वधर्म में मरना श्रेयस्कर – जय नारायण राय	38
13.	माँ का कर्तव्य – अंशुमान देव मालवीय	40

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 170.00
द्विवार्षिक	: रु. 320.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु.1000.00

• *विशेष लेख*

योगी बनो

योग–योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

देखो ! हर व्यक्ति को योगी बनना चाहिये। **न योगात्परतरं पुण्यम्** अर्थात् योग से आगे कोई पुण्य की वस्तु नहीं है। योग जैसी कोई पवित्र वस्तु संसार में दूसरी नहीं है। गीता में भगवान् ने योगी बनने की आज्ञा दी है –

' तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।

कर्मिभ्य श्चाधिको योगी, तस्माद्योगी भवार्जुन ।। '

हे अर्जुन ! योगी का दर्जा तपस्वियों, कर्मकाण्डियों से ऊँचा है। योगी ज्ञानियों से भी श्रेष्ठ होता है और कर्मकाण्डियों से भी योगी श्रेष्ठ है। इसलिये तुम योगी बनो। आगे भी भगवान् श्री कृष्ण आदेश करते हैं –

'वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव दानेषु यत्पुण्य फलं प्रदिष्टम्।

अत्येति तत्सर्व विदित्वा योगी परम स्थामुपैति चाद्यम् ।। '

वेद में, यज्ञ में, तप में और दान में जो पुण्य फल कहा गया है योगी उन सब को लाँघ करके आदि परम स्थान को प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार के आदेश भगवान् ने गीता में स्थान स्थान पर दिये हैं। इसलिये भगवान के वचनों को मानकर के हर व्यक्ति को योगी बनने का प्रयत्न करना चाहिये। गीता में भगवान ने **एकं साख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति** अर्थात् सांख्य और योग को जो एक ही देखता है ' वह यथार्थ देखता है ऐसा कहकर ज्ञान और योग के अभेद को बताया है। किन्तु निर्णय में एक बात फिर कह दी –

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः।

योगुयक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति।।

अर्थात् – योग के बिना संन्यास को प्राप्त होना कठिन है। किन्तु योगयुक्त मुनि शीघ्र ही ब्रह्मत्व को पा जाता है। संन्यास का मतलब है – काम्यनां कर्मणां न्यासः अर्थात् मन से सभी

कामनाओं का न्यास, त्याग ही संन्यास कहलाता है। यह संन्यास बिना योग के संभव नहीं है। इस प्रकार से भगवान् कृष्ण ने गीता के अन्दर योग की ही महिमा गाई है। अर्जुन को आदेश दिया कि हे अर्जुन तू योगी बन जा। एक छोटी सी बात और है, जिसे मैं तुम्हें स्पष्टीकरण के साथ समझा देना चाहता हूँ। अर्जुन ने गीता में एक और प्रश्न किया है –

अयति श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः ।

अप्राप्य योग संसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति ।।

'हे कृष्ण ! एक व्यक्ति ऐसा है जो योगी बनना चाहता है और योग मार्ग की ओर प्रवृत्त है, श्रद्धा है। किन्तु कदाचित् किसी कारण से वह योग से विचलित हो जाता है या योग में बढ़ नहीं पाता है, तो वह किस गति को प्राप्त होता है कहीं ऐसा तो नहीं है कि आकाश में उठने वाले जिस प्रकार बादल वायु से छिन्न भिन्न हो जाते हैं, उसी प्रकार से वह बीच में ही नष्ट तो नहीं हो जाता है। मेरे इस संशय का आप निवारण कर दें'। यह शंका हर व्यक्ति के मन में उठ सकती है। भगवान् ने इसका उत्तर देते हुये अर्जुन से कहा कि अर्जुन ऐसा व्यक्ति न तो इस लोक में नष्ट होता है और न ही परलोक में नष्ट होता है। कल्याण मार्ग की ओर जाने वाले का कभी नाश नहीं होता। शरीर छोड़ देने के बाद वह पुण्यात्माओं के लोकों को प्राप्त होता है। वहाँ पर वह बहुत समय तक वास करता है और फिर पवित्र धनवानों के घर में जन्म लेता है अथवा योगियों के ही घर में जन्म लेता है। वहाँ फिर पूर्वजन्म के बुद्धि संयोग को पाकर वह फिर योगाभ्यास में लग जाता है। योग का जिज्ञासु अर्थात् '**मैं योगी बन जाऊँ**' ऐसी इच्छा रखने वाला व्यक्ति भी कर्मकाण्डियों के दायरे से आगे निकल जाता है। देखो कर्मकाण्डी लोग स्वर्ग प्राप्ति के लिये हजारों अनुष्ठान करते हैं। तब कहीं जाकर उनको स्वर्ग की प्राप्ति होती है। किन्तु योगी को स्वर्ग दण्ड के रूप में मिलता है योग से भ्रष्ट हो गया इसलिये वह योग भ्रष्ट स्वर्ग को प्राप्त होता है। योग ध्यान से मन की एकाग्रता से जो पुण्य इकट्ठा हो सकता है वह सबसे बड़ा पुण्य है। तो इसलिये कर्मकाण्ड करते करते दान करते करते अनुष्ठान यज्ञ करते करते जितना पुण्य मनुष्य एकत्रित करता है, योगी ध्यान के प्रभाव से उन सब पुण्यों से आगे चला जाता है और भ्रष्ट हो जाने पर लम्बे समय तक पुण्यवानों के लोकों में स्वर्ग में निवास करता है। मेरे बड़े गुरु भाई ब्रह्म गोपालानन्द जी बताया करते थे कि योगी को स्वर्ग जेल के रूप में मिलता है। जिस प्रकार से बड़े-बड़े राष्ट्रीय नेताओं को जेल में तो रखा जाता है, किन्तु वहाँ पर उनको सब सुख सुविधा और आराम की वस्तुयें

उपलब्ध रहती हैं। वे सुख से वहाँ रहते हैं। किन्तु उन्हें जेल के अन्दर ही रहना पड़ता है। संसारी लोग कर्मकाण्ड अनुष्ठान और नाना प्रकार के तप करते हुये जिस स्वर्ग को बड़ी मुश्किल से प्राप्त करते हैं, योगी को वह स्वर्ग जेल के रूप में भोगने को मिलता है। स्वर्ग लोक में और मनुष्य लोक में क्या अन्तर है, इसे मैं थोड़ा स्पष्ट कर दूँ। देखो ! स्वर्गलोक के अन्दर विशेषता यह रहती है **न तत्र जरया विभेति** अर्थात् वहाँ बुढ़ापा नहीं आता वहाँ पर रोग नहीं होते शरीर युवा बना रहता है। इच्छित भोग, संकल्प मात्र से मिल जाते हैं। देवताओं को दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है। वे वहाँ से मनुष्य लोक के प्राणियों को देख सकते हैं, आशीर्वाद दे सकते हैं; बातचीत कर सकते हैं। उनके संकल्प मात्र से सभी वस्तुयें उपस्थित हो जाती हैं। देवलोकों की ऐसी विशेषता होती है। उपनिषदों में इस प्रकार का लेख मिलता है '**श्रृण्वन् श्रोत्रं भवति** ' अर्थात् स्वर्ग का कोई देवता यदि सुनना चाहता है तो जहाँ जहाँ तक शब्द व्याप्त है वहाँ तक के सारे शब्द को सुन सकता है। मनुष्य लोक में हम लोग इस चार दीवारी के अन्दर की आवाज को सुन लेते हैं, इससे आगे हम सुन नहीं पाते। हमारे यहाँ जिन लोगों के कान कम सुनते हैं, वे लोग आला (यंत्र) लगाकर शब्द को सुन लिया करते हैं। जिन के कान ठीक हैं, वह भी सीमित दूरी तक के ही शब्द सुन सकते हैं 'योग दर्शन बतलाता है -

श्रोत्राकाशयो: सम्बन्धसंयमात् दिव्यम् श्रोत्रम्

अर्थात् श्रोत्र एवं आकाश के सम्बन्ध में संयम करने पर दिव्य श्रोत्र की प्राप्ति होती है। दिव्य श्रोत्र अर्थात् देवताओं वाले कान हो जाते हैं। दिव्य श्रोत्र के हो जाने पर योगी लाखों कोस दूर तक के शब्दों को सुनने वाला हो जाता है। मैं तुम्हें बता रहा था कि देवता लोग सुनना चाहें तो उनके दिव्य कान हो जाते हैं। **जिघ्रन् नासिका भवति** अर्थात् सूँघना चाहें तो दिव्य नासिका हो जाती है, **'रसनं जिह्वा भवति'** रस लेना चाहें तो देवताओं की दिव्य जिह्वा हो जाती है। अर्थात् उनके पाँचों ज्ञानेन्द्रियों का इतना विस्तार हो जाता है कि वे एक स्थान पर बैठे-बैठे ही दूसरे लोकों में भी देख सकते हैं, सुन सकते हैं छू ,सकते हैं, आदि आदि। तुम विश्वास नहीं करोगे, क्योंकि आज के समय में यह अपरिचित सी बात हो गई है। योग तो भारत की अमूल्य निधि है। परन्तु आजकल का समय ऐसा है जिसमें मनुष्य के मन में अविश्वास की भावना आ सकती है। मैं तुम्हें आँखों देखी बतलाना चाहता हूँ कथा कहानी नहीं सुनाता हूँ। हमारे ऋषिकेश आश्रय में एक ब्रह्मचारी रहते थे वे मेरे गुरुभाई हैं। उन्हें मैं ठीक प्रकार से जानता हूँ (यह ब्रह्मचारी महापुरुष

गुरुदेव जी स्वयं थे उनकी अपनी अनुभूत घटना है यह) उनके मन में थोड़ी सी एक चोट आई हमारे एक छोटे गुरुभाई नर सिंह मूर्ति थे। उनको किसी कर्मकाण्डी ने बरसाने में बहका दिया था। वह उन्हें योग से हटाकर कर्मकाण्ड की दीक्षा देने लगे, माला फेरने वाली। उन ब्रह्मचारी जी ने ऋषिकेश बैठे हुये ही उनको देखा। तुम सब हैरान होंगे कि यह बात कैसे हो सकती है। किन्तु मैं तुम्हें सच्ची बात बता रहा हूँ। उन्होंने अपनी आँख उठाकर देखा क्योंकि उनकी आँख की नज़र पहले हरिद्वार गई, फिर सहारनपुर गई और फिर खेतों जगलों से होती हुई बरसाने में जहाँ गह्वर वन में उनको दीक्षा दी जा रही थी, पहुँची। उस ब्रह्म चारी ने अच्छी प्रकार से इन चीजों को खुली आँखों देखा। ध्यान में बैठकर नहीं खुली आँखों से सब देख लिया। उस ब्रह्मचारी ने ऋषिकेश से ही नैपाल वाले दादा गुरु के चिमटे उस कर्मकाण्डी गुरु पर मारे, जो नर सिंह मूर्ति को दीक्षा दे रहा था। तब उसके गुरु कहने लगे - भई ! तुम्हारे गुरु भाई मुझे पीट रहे हैं, मार रहे हैं। दीक्षा तो उन्होंने दे दी थी। अस्तु' मैंने तो उदाहरण देना था इसलिये यह घटना बताई है। मैं बता रहा था, स्वर्ग में देवता लोग देखना चाहते हैं तो **पश्यन् चक्षुर्भवति** अर्थात् देखना चाहें तो दूर-दूर तक देखने वाली आँखें उनको प्राप्त हो जाती हैं। आँखें वस्तुतः वहाँ तक देख सकती है। जहाँ तक अग्नि तत्व व्याप्त हैं। जल में भी अग्नि होती है जहाँ तक हवा हैं, वहाँ तक योगी स्पर्श कर सकता है। देवताओं को ये दिव्य इन्द्रियाँ स्वाभाविक इच्छा मात्र से होती हैं। योगियों को ये ताकतें समाधि के अन्दर प्राप्त होती हैं। योगदर्शन में पतंजलि जी महाराज कहते हैं -

'ततः प्रातिभश्रावणवेदनादर्शस्वादवार्ता जायन्ते ।' योगी जिस समय असम्प्रज्ञात समाधि की ओर बढ़ता है, तो योगी को प्रातिभ ज्ञान होने लगता है। प्रातिभ ज्ञान का अर्थ है जिस प्रकार अंधेरा खत्म होने लगता है और थोड़ा उजाला होने लगता है तो उसमें वस्तुयें दिखाई देने लग जाती हैं। इसी प्रकार से योगी को वस्तुओं का यथार्थ ज्ञान होने लगता है। यह प्रातिभ ज्ञान है। **'श्रावण '** श्रावण का अर्थ है - दिव्य कर्णेन्द्रिय की प्राप्ति। इससे योगी दूर दूर की बातों को जर्मनी जापान तक की बातों को सुन लिया करता है। इतने लम्बे कान योगी के हो जाते हैं। वेदना सिद्धि के आ जाने पर योगी लाखों मील दूर की वस्तु को छू सकता है - **'स्पृशति चन्द्रमसमपि'**। योगी चन्द्रमा को भी छू लेता है। आदर्श सिद्धि से उसे दिव्य नेत्र उपलब्ध हो जाते हैं जिससे वह दिव्य रूपों को देखने वाला बन जाता है। **'आस्वाद'** सिद्धि से दिव्य रसों को ग्रहण कर लेता है और वार्ता सिद्धि से दिव्य गंध का साक्षात्कार कर लेता है। उसकी घ्राण शक्ति

अपरिमित हो जाती है। ये सारी की सारी शक्तियाँ योगी को समाधि के बल से प्राप्त हो जाती हैं। देवताओं में ये शक्तियाँ स्वभाव से रहती हैं, योगी समाधि के बल से इन्हें प्राप्त कर लेता है। यदि योगी अभ्यास करते करते योग से भ्रष्ट हो जाता है, तो उसको अगले शरीर में स्वर्ग सजा के रूप में मिलता है। वहाँ सब दिव्य ही दिव्य है। इस प्रकार भगवान् ने योगभ्रष्ट होने के विषय में जो अर्जुन की शंका थी, उसका निवारण किया था। श्री कृष्ण चन्द्र तुम्हारे भी प्राण हैं और मेरे भी प्राण हैं। सारे प्राणियों के प्राण हैं। देखो ! कृष्ण चन्द्र कभी किसी के मोह में नहीं पड़े पुराणों को उठा कर देख लो उस प्रकार का कोई प्रसंग नहीं मिलता है। बृज मण्डल में गोपियों पर शक्तिपात किया और उन्हें जो कुछ बनाना था बना दिया। द्वारिकापुरी में एक बार नारद जी आ गये कहने लगे !' महाराज! आपके पास सोलह हजार रानियाँ हैं आप इन का क्या करेंगे ? कृष्ण चन्द्र कहने लगे – नारद ! तुम ठीक कहते हो ! तुम ऐसा करो जो रानी खाली बैठी हो उसे तुम ले जाओ। नारद जी सब रानियों के महलों में गये। कोई भी रानी खाली नहीं मिली। सब जगह कृष्ण जी विराजमान थे। कहीं पर भोजन कर रहे थे कहीं पर यज्ञ कर रहे थे, कहीं पर वार्तालाप कर रहे थे। नारद जी चुपचाप लौट आये। कितनी बड़ी शक्ति थी निर्माणकाय की। जितनी रानियाँ उतने ही कृष्ण थे। रासलीला के समय में जितनी गोपियाँ थी उतने ही कृष्ण थे। हर गोपी के साथ कृष्ण चन्द्र थे।

यह थी भगवान् की कायनिर्माण शक्ति। आज कल हर व्यक्ति कृष्ण तो बनना चाहता हैं। रासलीला करना चाहता है। पीले कपड़े पहन लेते हैं, बाँसुरी हाथ में ले लेते हैं कुछ औरतों को बहका कर रासलीला का अभिनय करते हैं। किन्तु यदि वे कृष्ण जी बनते हैं तो कम से कम अपना एक शरीर और बनाकर दिखाये यह सब नहीं होता है किसी से। भगवान् कृष्ण चन्द्र का योगेश्वर्य सर्वत्र दिखाई देता है। उन योगेश्वर की आज्ञा है, सब को योगी बनने की। यदि बीच में भी भ्रष्ट हो जाओगे तो दिव्य स्वर्ग में बहुत समय तक वास करने के बाद पवित्र धनवान और योगियों के घर में ही जन्म लोगे, यह भगवान् का सबको उपदेश है। मैंने किसी व्याख्यान में तुम्हें कानपुर के एक लड़के की बात सुनाई थी। कानपुर में हमारा बच्चा सुरेश चन्द्र शर्मा उस समय कई शुगर मिलों के मैनेजिंग डाइरेक्टर थे। उनके घर में हमारा योग प्रचार कार्यक्रम हर साल होता था। वह लड़का इस जन्म में डाक्टर था। परन्तु उसे अपने पूर्व जन्म की सारे बातें याद थीं। वह पूर्वजन्म में भी योगाभ्यास करता था। इस जन्म में धनवान कुल में पैदा हुआ था। वह इस समय

23-24 वर्ष का है। उसने अपने पिछले जन्म के छत्तीस वर्ष के लड़के की शादी अपने खर्चे से की है। वह अपने पूर्वजन्म की सारी बातें बताता है। उसे अपने पूर्वजन्म में यह मालूम हो गया था कि शरीर छूटने वाला है तो वह ध्यान में बैठ गया फिर उसे याद नहीं रहा कि उसने शरीर कैसे छोड़ा। कहने का अभिप्राय है यदि योग ध्यान करते हो और थोड़ी बहुत वासना मन में रह गई है तो अगले जन्म में तुम्हें स्वर्ग मिलेगा। उसके बाद फिर पवित्र धनवानों के यहाँ तुम्हारा जन्म होगा। यदि वासना मन में न हो तो तुरन्त मनुष्य जन्म मिल जाता है और वह योगाभ्यास में लग जाता है। योगदर्शन में भी '**भवप्रत्ययो विदेह प्रकृतिलयानाम्**' कह कर इस बात को प्रमाणित किया है। लोग प्रश्न किया करते हैं कि मीरा बाई , नरसिंह मेहता, तुलसी दास तथा बृज गोपियों ने कौन सी योग साधना की। उन्होंने भगवान को पाया है, लोग समझते हैं कि उनकी साधना योग से भिन्न है और योग कोई और वस्तु है। देखो ! योग के दो भेद हैं। साधन योग के अन्दर मनुष्य साधना करता हुआ धीरे-धीरे अपने परम लक्ष्य समाधि को प्राप्त कर लेता है। जैसे मैंने कल प्राणायाम का उदाहरण दिया था प्राणायाम का परिणाम बताया था - '**ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्**' प्राणायाम से प्रकाश के रास्ते में जो रुकावट आती है वह दूर हो जाती है जिसके हट जाने पर दूर दर्शन, दूर श्रवण आदि आदि योग्यता प्राप्त हो जाती है। इन्द्रियों के मल जल जाने पर इनकी शक्तियाँ असीमित हो जाती हैं। तप का फल बताया था कि '**कायेन्द्रिय सिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः**' अर्थात् तप से शरीर और इन्द्रियों की अशुद्धि क्षय हो जाने पर कायिक और ऐन्द्रिय सिद्धि साधक को प्राप्त हो जाती है। कायिक सिद्धि का अर्थ है शरीर का बज्र की तरह कठोर हो जाना, अत्यन्त सुन्दर बन जाना, युवा बने रहना आदि-आदि। ऐन्द्रिय सिद्धि का अर्थ है इन्द्रियों की अप्रतिहत गति का प्राप्त हो जाना अर्थात् उनके रास्ते में कोई किसी प्रकार की रुकावट न रहे तो वह ऐन्द्रिय सिद्धि कहलाती है।

पतंजलि जी ने एक सूत्र में समझाया है कि यदि योगी सूर्य में संयम कर ले तो, उसे सारे भुवनों का ज्ञान हो जाता है। संयम क्या वस्तु है, पहले इसको भी समझना आवश्यक है। मैंने तुम्हें यह पहले बताया था कि योग के आठ अंग होते हैं यम-नियम-आसन-प्राणायाम प्रत्याहार-धारणा, ध्यान और समाधि। उनमें से यम से लेकर प्रत्याहार तक बाह्य साधना साध्य हैं इनमें नेत्र बन्द करने की आवश्यकता नहीं। यम-नियम का पालन करना है मनसा वाचा कर्मणा, अपने शरीर मन पर संयम रखना है। ये योग के पाँच बहिरङ्ग कहलाते हैं क्योंकि इनका पालन

बिना आँखें बन्द किये भी किया जा सकता है। किन्तु धारणा, ध्यान और समाधि अन्तरंग साधनाएँ हैं जो मन को एकाग्र करके ही साध्य होती हैं। धारणा शब्द का अर्थ है '**देशबन्ध चितस्य धारणा**' अर्थात् किसी एक लक्ष्य पर वृत्ति बंध से अपने चित्त को ठहराना। ये दो प्रकार की होती है बाह्य धारणा और आभ्यन्तर धारणा। बाह्य धारण का अर्थ है कि हम किसी चीज को देखकर अपने मन को उसमें ठहरायें जैसे यह फूल हैं उससे हम मन को ठहराये तो यह बाह्य धारणा कहलायेगी। आभ्यन्तर धारणा में हम अपने मन को शरीर के अन्दर किसी लक्ष्य पर केन्द्रित करते हैं। मानो हमारे मन के अन्दर भगवान शंकर के स्वरूप की कल्पना है, तो भगवान शंकर के स्वरूप में अपने मन को ठहराने के प्रयत्न को आभ्यन्तर धारणा कहेंगे। जिस वस्तु का ध्यान करते हैं, उनमें चित्त की वृत्ति उस आकार की रहे उसे वृत्ति बंध कहते हैं। इस धारणा के अभ्यास को यदि बराबर बढ़ाते चले जायें तो यह धारणा ध्यान के रूप में बदल जाती है। हम कल्पना करके देखते हैं कि भगवान् शिव बैठे हुये हैं। यह कल्पना है किन्तु जिस समय यह धारणा के रूप में बदल जायेगी, उस समय भगवान शिव दिखलाई देने लगेंगे। ध्यान का अर्थ है **तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्** अर्थात् वृत्ति में सदृश प्रवाह का होना। सदृश प्रवाह का अर्थ है जिस प्रकार से एक बर्तन से तेल गिराना शुरू कर दें, तो वह धारा बीच में टूटेगी नहीं। इसी प्रकार से चित्त की वृत्ति धारा की भाँति लक्ष्य पर स्थिर रहे उसे ध्यान कहते हैं। जिस का हम ध्यान कर रहे हैं वह बराबर हमें दीखतें रहें यही ध्यान है। वही ध्यान अभ्यास परिपाक से कालान्तर में समाधि में बदल जाया करता है। समाधि का अर्थ है '**तदेवार्थमात्रनिर्भासम् स्वरूपशून्यमिव समाधि।**

अर्थात् - जिसमें साधक जिसका ध्यान करता है वही दीखता रहे वही भासित होता रहे वह 'समाधि' है। जैसे भगवान शिव का हम ध्यान कर रहे हैं, ध्यान करते करते हम अपने आप को ही शिव समझने लगें, 'शिवोऽहम्' की अनुभूति होने लगे, हमें अपना शरीर शंकर के स्वरूप जैसा दिखाई देने लगे, हमें यह ज्ञान न रहे कि अमुक मेरा नाम है, मैं अमुक स्थान पर बैठा हूँ आदि-आदि। इस प्रकार से साधक अपने को अपने इष्ट के रूप में देखता है, उसे **कृष्णोऽहम् रामोऽहम् शिवोऽहम्** की अनुभूति रहती है वह समाधि है। इस के साथ साथ इस प्रकार का ज्ञान कायम हो जाने पर भगवान शिव राम आदि के भक्तों को अपना भक्त देखता है। समाधि और संयम में कोई खास अन्तर नहीं है। संयम का अर्थ है '**त्रयमेकत्र संयमः**' धारणा ध्यान और

समाधि एक विषयक हो जायें, तो उसे संयम कहते है अर्थात् जिसकी धारणा करनी आरम्भ की थी, वही ध्यान में आये और उसी में समाधि हो जाये, ये तीनों जब एक विषयक होते हैं,तो उसका नाम संयम हो जाता है। 'भगवान' पतंजलि जी कहते हैं '**भुवन ज्ञानं सूर्ये संयमात्**' यदि योगी सूर्य में संयम करता है अर्थात् योगी सूर्य के अन्दर अपने आप को मिला लेता है, तो उसको सारे भुवनों का ज्ञान हो जाता है सूर्य में संयम का अर्थ यह नहीं होता कि हम आँख उठाकर सूर्य को देखना शुरू कर दें। चन्डीगढ़ में कुछ दिन पहले एक व्यक्ति ने ऐसे ही त्राटक की विधि से सूर्य को देखना शुरू किया था परिणाम यह हुआ कि वह तीन दिन में अंधा हो गया। संयम का तरीका यह नहीं था। भीतरी सूर्य के अन्दर लयता प्राप्त करने को संयम कहते हैं। तदाकार वृत्ति का नाम 'संयम' है। इस प्रकार से साधन योग का विद्यार्थी, साधना करते - करते समाधि को प्राप्त करता है। योग प्राप्ति का दूसरा मार्ग है सिद्ध योग का। सिद्धयोग का विद्यार्थी एक दम समाधि को प्राप्त हो जाता है। योग क्या है ? तुम लोग पहले इसे समझ लो। भगवान पतञ्जलि ने '**योगश्चित्त वृति निरोध:**' कहकर योग की परिभाषा की है। चित्तवृत्तियों का बिल्कुल निरोध (समाप्त) हो जाना योग है ! 'योग: समाधि समाधि को ही योग कहते हैं। " **समाधि समतावस्था जीवात्मपरमात्मन:** अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा को अभिन्नता को समाधि कहते हैं। समाधि में योगी का बौद्धेय ज्ञान समाप्त हो जाता है। वह अपने आत्म स्वरूप में स्थित हो जाता है। इसी का नाम कैवल्य है इसी का नाम केवली भाव है। मैंने तुम्हें पहले भी समझाया था। आत्मा अखण्ड ज्योति रूप है -

' अच्छे द्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्यो ऽशोष्य एव चा

नित्य: सर्वगत: स्थाणुरचलोऽयं सनातन: । '

यह आत्मा अछेद्य है, अदाह्य है और अशोष्य है, अर्थात् इसे शस्त्र काट नहीं सकते, अग्नि जला नहीं सकती। जल गीला नहीं कर सकता, वायु सुखा नहीं सकती। यह आत्मा नित्य है, सर्वव्यापी है कूटस्थ (अविकारी) और सनातन है। इस प्रकार से भगवान् ने गीता में आत्मा के स्वरूप का वर्णन किया है। शंका होती है यदि आत्मा अविकारी है तो विकारी जैसा क्यों दिखाई देता है ? यह अपने को सुखी दु:खी क्यों मानता है ? इसका कारण मात्र एक है। अविद्या के संयोग से ऐसा होता है। जैसे आत्मा के संयोग से बुद्धि को चेतना मिल गई और जो बुद्धि के सुख दु:ख आदि धर्म हैं वे आत्मा में आरोपित हो जाते हैं। इसी को जड़ चेतना की गांठ, अथवा

अविद्या ग्रन्थि कहते हैं। सब योगी, महात्मा, साधक इस अविद्या ग्रन्थि भेदन के लिये ही लगे हुये हैं। मैं तुम्हें साधन योग से सम्बन्धित बातें बता चुका। योग प्राप्ति का दूसरा रास्ता सिद्धयोग है जिसे मैं तुम्हें समझा रहा हूँ। सिद्धयोग में सिद्धलोग जहाँ जिस पर कृपा किया करते हैं, वह चाहे अभिमानी है, क्रोधी है, दुष्ट है, किन्तु जहाँ शक्ति पात हुआ वहाँ उसकी समाधि हो जाती है और इस प्रकार से सिद्ध लोग अपने उन शिष्यों को जंगलों में ही रख लेते हैं। उन्हें वे लोग महीना-महीना, दो-दो महीना समाधि में बिठा देते हैं। उसके बाद एक आध दिन उठने के बाद फिर बैठ जाते हैं। इस प्रकार से धीरे - धीरे कई-कई महीनों की समाधि होने लगती है। ऐसी स्थिति में उनकी जो वृत्ति है उसका शमन हो जाता है। 'निर्बीज' समाधि में '**तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्** ' अर्थात् आत्मा अपने स्वरूप में स्थित हो जाती हैं। जब तक समाधि रहती हैं, यह स्थिति रहती है। व्युत्थान (समाधि भङ्ग) में आ जाने पर '**वृत्तिसारुप्यमितरत्र**' के अनुसार जैसा उस का स्वभाव होता है, वैसे ही बरतने लग जाता है। काम क्रोध, लोभ मोह बुद्धि कृत हैं, इसलिये व्युत्थान में जैसा स्वभाव बना हुआ है, योगी वैसे ही वर्तता है। दुर्वासा जी का क्रोधी स्वभाव वाला होना प्रसिद्ध है। जब तक वह समाधि में रहेंगे उस समय तक उनकी वृत्ति स्वरूप में लय होकर तदाकार रहेगी। किन्तु जब समाधि से उठ जायेंगे तो **वृतिसारुप्यम्** के अनुसार वर-शाप आदि देने लगेंगे। '**वृतिसारुप्यम्**' के समय आत्मा का रूप भी बुद्धि के धर्मों जैसा ही प्रतीत होने लगता है।

सिद्ध लोगों के सम्पर्क में कोई पुण्यात्मा आ जाता है तो सिद्ध लोग उस पर शक्तिपात करके समाधि में बिठा देते हैं।

सिद्ध लोग कभी-कभी कामी, क्रोधी, लोभी पर भी शक्ति पात करके उसे समाधि की ओर बढ़ा देते हैं। तुम लोग अपने मन में सोचते होंगे कि ऐसे लोगों पर सिद्ध शक्ति पात क्यों करते हैं, जब तक उनकी वृत्ति शुद्धि नहीं हो जाती ? देखो वृत्ति चाहे पुण्यात्मिका हो या पापात्मिका, दोनों ही हेया हैं। पुण्यात्मिका वृत्ति भी बंधन का कारण बनती है। इस वृत्ति के कारण मनुष्य को जन्म मरण के चक्कर में रहना पड़ता है। अच्छी वृत्ति के परिणामस्वरूप स्वस्थ शरीर, ऊँचा पद मिलता है और सुख सुविधायें मिल जाती हैं। किन्तु उसका बंधन से छूटना नहीं होता इसी प्रकार से कठोर अर्थात् क्लिष्ट वृत्ति भी बंधन का कारण ही है। इसलिये बार-बार समाधि के अभ्यास से इन दोनों वृत्तियों को ही समाप्त करना होता है। मैंने तुम्हें बताया था कि शक्तिपात कर देने के

बाद सिद्धयोगी अपने शिष्यों को फिर जमीन पर जनसमूह में आने नहीं देते। क्योंकि यहाँ आकर वह फिर वर शाप के झमेले में पड़कर पतन की ओर जा सकते हैं उदाहरण के रूप में इस बात को समझा दूँ। हमारे गुरु भाई हरिहरानन्द जी शीशागिरी पहाड़ी पर तीन महीनों में समाधि से उठते हैं। श्री प्रभु जीने उन्हें तीव्र शक्तिपात करके, भूत जयी सिद्ध बनाकर वहाँ 'बिठा दिया' इसी का नाम सिद्धयोग है। एक बार हरिद्वार कुम्भ में हमारे गुरुभाईयों की इच्छा हो गई कि हम उनके दर्शन करें। उन्होंने मिल कर श्री प्रभु जी प्रार्थना कि प्रभू जी ! हम लोगों की इच्छा है कि हम लोग भाई हरिहरानन्द जी का दर्शन करें आप कृपा कर उन्हें बुला लें। प्रभु जी कहने लगे " उसे यहाँ मत बुलाओ, वह आने लायक नहीं हैं " किन्तु वे सब हठ करने लगे। अन्त में प्रभु जी ने कहा तुम ध्यान में बैठकर कहो गुरुदेव का हुकुम है चले आओ। 'गुरुदेव का हुकुम पाकर हरिहरानन्द जी वहाँ से चल पड़े अवस्था उनकी 20-24 साल की थी। समाधि की अवस्था के योगी का शरीर घटता बढ़ता नहीं है। योगी लोग प्राणकोश को ऊपर सहस्रार में चढ़ा लेते हैं। शरीर की क्रियायें बन्द ही रहती हैं। कभी-कभी प्राणकोश नीचे ले जाते हैं तो उठकर कन्दमूल आदि भी खा लिया करते हैं। हरिहरानन्द जी पहाड़ से नीचे उतर कर आने लगे। आते समय किसी गाँव के पास वृक्ष के नीचे बैठ गये। वे नग्न शरीर थे और वहाँ पर विश्राम कर रहे थे। इतने में गाँव के कोई ठाकुर साहब आये उसे देखकर ताड़ते हुये कहने लगे नंगा पड़ा हुआ है, उठ जाओ और चले जाओ यहाँ से वह तो उठे नहीं। इस पर ठाकुर साहब ने उनकी पीठ पर दो तीन छड़ी मार दी। हरिहरानन्द जी क्रोध से उठ गये और कहने लगे अच्छा मैं तो उठ गया, परन्तु तू यहीं गिरजा। वह वहीं गिर गया और उसके प्राण छूट गये। श्री प्रभु जी उस समय हरिद्वार में भोजन कर रहे थे। अचानक कहने लगे – ओह ! बहुत बुरा हुआ ! तुम लोग मानते नहीं हो। देखो हरिहरानन्द ने एक आदमी को शाप देकर मार दिया है। अब तुम जाओ उसे कह दो कि वह वहीं से वापिस लौट जाये। एक गुरुभाई ने वहाँ जाकर उन्हे कह दिया कि 'प्रभु जी की आज्ञा है तुम वापिस लौट जाओ। वह वहीं से वापिस लौट गया। मैं तुम्हें बता रहा था कि सिद्धलोग शक्ति पात करके अपने शिष्यों को इसीलिये जमीन पर आने नहीं देते। वर-शाप की शक्ति उनमें स्वाभाविक होती है। यहाँ आकर हिताहित करेंगे इसलिये सिद्ध गुरुदेव शिष्यों को जमीन पर आने नहीं देते। सिद्धयोग में गुरुदेव की कृपा से शिष्य सीधे समाधि की स्थिति पर पहुँच जाता है। मीराबाई, नरसिंह, तुलसी दास आदि-आदि जितने भी भक्त योगी हुये हैं, सब पर सिद्ध गुरु की कृपा हुई और उन्हें अन्तदर्शन होने लगा। सिद्ध संगति से ही मनुष्य योगी बनता है। मनुष्य चाहे कुछ भी साधना करता है, किन्तु पुण्य के प्रभाव से

सिद्धानुकम्पा से ही वह कृतार्थ होता है, योगी बनता है। तुम्हें यह भी याद रखना चाहिये कि सिद्ध दो प्रकार के होते है, एक अनादि सिद्ध ईश्वर दूसरे साधना सिद्ध योगिराज। सिद्धयोग के अन्तर्गत इन दोनों प्रकार के सिद्धों में से किसी की भी कृपा हो जाये तो मनुष्य योगी बन जाता है। इसलिये तुम सब को इस अनमोल-निधि को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये। मनुष्य पूरा धनी, योग से ही बनता है।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।

ये भगवान् श्री कृष्ण चन्द्र के वचन हैं। योग को पाकर के ही मनुष्य सब प्रकार से धनी होता है। मैं समझता हूँ कि हिन्दुओं के अतिरिक्त संसार में ईसाई, यहूदी, पारसी आदि-आदि धर्मों के उपासक भी योग को ही प्राप्त होते हैं। तभी उन्हें ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है। बिना योग के किसी को भी सत्य ज्ञान, ईश्वर दर्शन एवं परम गति की प्राप्ति हो ही नहीं सकती। बड़े भाग्य से योग मार्ग मिलता है। इसलिये होशियारी करो। यदि तुम मेरे बच्चे हो, मेरी बात को मानते हो तो 2 घण्टे जाप एवं एक घण्टा ध्यान का नियमित अभ्यास करते चले जाओ। अपने पुरुषार्थ में लगे रहो। यदि इधर उधर के झमेले में पड़े रहोगे, अपना अमूल्य समय नष्ट करोगे यह बहुत बुरी बात होगी। मनुष्य का जीवन बहुत कठिनाई से मिलता है। समय रहते अपने अभ्यास में लग जाओ और अपने आप को इस परम पवित्र मार्ग की ओर बढ़ते चले जाओ। यदि ऐसा करोगे तो आनन्द कन्द श्री प्रभु जी की अवश्य कृपा होगी। वे अपने हर बच्चे को नैपाल, हिमालय में बैठे-बैठे ही देखते हैं। इसलिये उन चरण कमलों का चिन्तन करते हुए साधनारत हो जाओ। यही कल्याण का मूल साधन है।

बार-बार आशीर्वाद

● ● ●

नववर्ष मंगलमय हो !

– योगाचार्य डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

ईस्वीय वर्ष 2015 बीत गया है। वर्ष के मृदु एवं कटु अनुभव मन में लिये आगामी सुखमय जीवन की आकांक्षा उर में लिये नये वर्ष में पदार्पण कर रहे हैं। मनुष्य अपने जीवन में हर क्षण कुछ न कुछ नया सीखता रहता है। ईश्वर की मनुष्य को सबसे बड़ी देन बुद्धि है। इसी से वह अपने हित व अहित की बात सोचता है। दूसरे जीवों की अपेक्षा मनुष्य की सोच एवं क्षमता बहुत अधिक है जो स्वयं में एक चमत्कार है। मनुष्य शुभ अशुभ दोनों प्रकार के कर्म में पूर्ण स्वतन्त्र है किन्तु फल में स्वतन्त्र नहीं है।

' कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन '। (गीता 2/47)

यह भगवदवचन है! मनुष्य पापाचरण करता है किन्तु फल शुभ कर्म का चाहता है जो संभव नहीं होता है। मनुष्य को प्रदान की गई अपार विचार शक्ति का प्रयोग सकारात्मक कार्य के लिये ही करना चाहिये नकारात्मक व विनाशात्मक कार्य के लिये नहीं।

गीता में भगवान् ने जीवन में हर क्षण योग के प्रयोग की बात कही है। योग की शिक्षा मनुष्य को सदा ही सकारात्मक दिशा में कार्य करने की प्रेरणा देती है। मनुष्य को योग की शिक्षा जीवन में उसी प्रकार से उतारनी चाहिये जिस प्रकार से वह अपने शरीर को आभूषणों से सजाता है। मानव का समग्र जीवन योग की शिक्षा से ही उज्जवल बन सकता है। योग की विद्या को जीवन में उतारने के लिये बहुत धैर्य की आवश्यकता होती है। भगवान् गीता में कहते हैं–

" योगो अनिर्विण्ण चेतसा " (गीता 6/23)

अर्थात् बिना उकताये धैर्य पूर्वक करते रहना चाहिये। धैर्य पूर्वक लम्बे समय तक योग के अंग–उपांगों का अनुशीलन मनुष्य को जीवन में उन्नति के अन्तिम शिखर तक पहुँचा सकता है। महर्षि व पतञ्जलि एक सूत्र में बतलाते हैं कि साधक को लम्बे समय तक, निरन्तरता पूर्वक एवं सत्कार पूर्वक अभ्यास करने पर ही दृढ़ भूमि प्राप्त होती है। सत्कार पूर्वक का तात्पर्य है अत्यन्त श्रद्धा के साथ तत्परता पूर्वक एवं संयमित जीवन जीते हुये साधना करने पर सिद्धि प्राप्त होती है। योग पशुवत मूढ़ व्यक्ति को भी श्रेष्ठ नर तथा फिर नारायण बना देता है। योगी को निष्काम भाव से साधना करते रहना चाहिये। वेद भगवान् की आज्ञा है।

" कुर्वन्नैवेह कर्माणि जिजिविशेत शत: समा: "

अर्थात् मनुष्य को निष्काम भाव से सौ वर्ष की आयु की इच्छा रखते हुये साधना रूप

कर्म में रत रहना चाहिये। ऐसा करते हुये मनुष्य कर्म फल से लिप्त नहीं होता। भौतिक सुखों की इच्छा को त्याग कर आत्म लाभ की इच्छा से कर्मरत रहना चाहिये। योगी लोग आसक्ति रहित होकर आत्म शुद्धि के लिये कर्म करते ही रहते हैं।

" योगिनः कर्म कुर्वन्ति सगं त्यक्त्वा आत्मा शुद्धये " । (गीता 5/11)

सांसारिक कामनाओं के त्याग पूर्वक साधना करने से ही साधक सिद्धि को पा सकता है। गीता में भगवान कहते हैं –

" न ह्यसंन्यस्त संकल्पो योगी भवति कश्चन " । (गीता 6/2)

योगी अपनी सांसारिक कामनाओं की पूर्ति के लिये ध्यान नहीं करता प्रत्युत चित्त शोधन के लिये ही प्रयासरत रहता है। चित्त की पूर्ण शुद्धि ही योगी का लक्ष्य है इसी से ही कालान्तर में वह कैवल्य लाभ प्राप्त करता है। पातञ्जल दर्शन का सूत्र है –

" सत्व पुरुषयो शुद्धि साम्ये कैवल्यम् " विभूतिपाद सू. (55)

अर्थात् – बुद्धि (चित्त) एवं पुरुष दोनों की ही पूर्ण शुद्धि होने पर कैवल्य लाभ होता है। योगी का लक्ष्य कैवल्य लाभ प्राप्त करना है। तभी योगी सर्वथा क्लेशों से मुक्त होकर अपने शुद्ध स्वरूप में अवस्थित रहता है।

आइये ! नववर्ष की इस पावन वेला में हम सर्व शक्तिमान श्री प्रभु जी से प्रार्थना करें कि वे हमें सद्बुद्धि देते हुये हमारे योग और क्षेम का वहन करें अर्थात् जो स्थिति प्राप्त नही है उसे प्राप्त करें तथा प्राप्त स्थिति का भी वे संरक्षण करें। प्रभु का चिन्तन करने वाले की लौकिक आवश्यकतायें तो अनायास ही पूरी हो जाती हैं। अतः हम लोग पूर्णतया योगनिष्ठ होकर सतत ध्यानाभ्यास करते रहें यह शक्ति प्रभु प्रदान करें।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिदद्ुःख भाग्भवेत्।

इति शम् ।

● ● ●

नववर्ष 2016 के शुभावतरण पर त्रिभाषा-रचित

(संस्कृत, अंग्रेजी तथा हिन्दी) में पद्यात्मिका स्वरचनायें

– द्वारका प्रसाद शर्मा, लखनऊ

(संस्कृत भाषायाम्)

सर्वे निजैः कर्मभिरेव बद्धाः, फलं तदीयं प्रियमप्रियं वा।
भुञ्जामहेऽत्रैव न रमामहे किं, जुगुप्सिते कर्मणि भूय एव।।1।।

द्विष्मो वयं किं न प्रभो! भवद्भ्यः, विघ्नो भवानेव विराजतेऽन्तः।
भूतेषु सर्वेषु तथापि कुर्मः, परोक्षभावेन भवन्निरादरम्?।।2।।

सुखं मृग्यमाणा वयं विस्मरामः, सुखं वर्धते तत्तु प्रदीयमानात्।
भवद्दयातः प्रभवेदियत् प्रभो, करवाणि कर्माणि तवार्पितानि।।3।।

याचे भवद्भ्यश्च नवीनवर्षे, कृपामियन्तामपि रोचते चेत्।
यो योऽपि पठितुं प्रयतेत विज्ञः, जीवेच्छतं सुतनुषा, दशासा सुमनसा।।4।।

(This is in Hindi Verses of Sanskrit Verses)

प्रभो! बंधे हम सभी कर्म द्वारा, शुभ या अशुभ कर्म-फल भोगते हैं।
''है कर्म कुत्सित'' यह जानते भी, वही कर्म क्या हम न करते रहे हैं।।1।।

प्रभो! जानते, आप सब में विराजें, नहीं आपसे द्वेष हम कर रहे हैं।
हैं द्वेष करते किसी व्यक्ति से भी, निरादर न क्या आपका कर रहे हैं?।।2।।

रहे खोजते सुख, यही भूल जाते, सुख ही बढ़ेगा, सुख बाँटने पर।
है कामना हे प्रभो! आपसे यह, करूँ कर्म भी आपको सामने कर।।3।।

नया वर्ष आया नयी याचना यह, स्वीकार मेरी प्रभो! यह भी कर लें।
रसज्ञ, मर्मज्ञ, सुविज्ञ जो पढ़े, मानी, धनी और शतायु हों वे।।4।।

May the New Year be a Blissful one

(This is in English Verses of Sanskrit Verses)

Tied are we with the actions performed,
And undergo consequently the results auspicious or otherwise
Knowing the actions contemptibility even,
We go on performing becoming unwise. (1)

We know O Lord! you are seated in one and all,
Showing hatred into one, do we not hate you O Lord!
Exhibiting hatred against anyone in person,
Do we not indirectly despise much the God. (2)

Sought for is happiness, but forget we,
Sharing pleasures multiplies the happiness.
I wish Lord! a boon from yourself,
Whatever should I do, may do experiencing your nearness. (3)

The New Year has dawned and again I beseech,
May this be accepted depending upon your benign Choice.
Be it gone through by anyone whosoever he be,
May beget the life's century, the honours, & wealth as its price. (4)

●●●

श्री मद्भागवत में योगपरिचर्चा

– डॉ. विजय सिंह

स्कन्ध छ: के अठ्ठारहवें अध्याय में दिति एवं अदिति के संतानों तथा मरुद्गणों की उत्पत्ति का वर्णन विस्तार से किया गया है।

इस अध्याय के प्रारम्भ में महायोगी वाल्मीकिजी को वरुण पुत्र बताया गया है। वल्मीक से पैदा होने के कारण ही उनका नाम वाल्मीकि पड़ा **"वाल्मीकिश्च महायोगी वल्मीकादभवत्किल "**। कश्यप नन्दन भगवान वामन ने माता अदिति के गर्भ से उत्पन्न हुये जो स्वंय भगवान विष्णु थे, जिन्होंने वलि पर अनुग्रह करने के लिये तीन पग पृथ्वी माँगकर तीनों लोक नाप लिये थे।

श्री कश्यप जी के दूसरी पत्नी दिति से हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष हुये। हिरण्यकशिपु के पुत्रों भगवान भक्त प्रहलाद तथा इनके पुत्र विरोचन तथा इनके पुत्र वलि हुये। आगे के स्कन्धों में इन भागवत असुरों की गाथा गायी गयी है। दिति के उनचास पुत्र और थे जिनका नाम मरुद्गण है। देवराज इन्द्र ने उन्हें अपने ही समान देवता बना लिया। यह कैसे हो पाया उस कथानक का मर्म जानने हेतु परिक्षित ने जिज्ञासा किया।

भगवान शुकदेव जी ने बताया– राजन ! दिति के महान बलवान पुत्रों हिरण्यकशिपु एव हिरण्याक्ष को जब इन्द्र पर उपकार करने हेतु भगवान विष्णु ने मार डाला। तब दिति ने – अपने पति श्रीकश्यप जी को प्रसन्न कर वरदान माँगा। आप कृपा करके एक ऐसा अमर पुत्र दें जो इन्द्र को मार डाले। भगवान कश्यप बड़े धर्म संकट में पड़ गये। उन्होंने दिति को एक वर्ष तक का व्रत अनुष्ठान बताते हुये कहा कि ऐसा करने से तुम्हें इन्द्र को मारने वाला पुत्र होगा। परन्तु नियमों में त्रुटि हो गया तो वह देवताओं का मित्र बन जायेगा।

पुत्रस्ते भविता भद्रे इन्द्रहा देवबान्धवः।
संवत्सरं व्रतमिदं यद्यञ्जो धारयिष्यसि ।।45।। (अ.18 स्क.6)

श्रीकश्यप जी ने " पुंसवन " नामक व्रत के विधि–निषेध को विस्तार से समझाकर आगाह किया कि त्रुटि हीन व्रत पालन से तुम सफल मनोरथ होगी।

दिति पूर्ण निष्ठा और दृढ़ता से व्रत पालन करने लगी। इधर इन्द्र ने दिति के मन्तव्य को जानकर कपट वेष धारण कर व्रत परायण दिति के व्रत–पालन की त्रुटि पकड़ने हेतु उसकी सेवा करने लगे।

अनेक मास व्यतीत होते–होते दुर्बल हुई दिति एक दिन सन्ध्या के समय जूठे मुँह, बिना आचमन किये सो गयी। योगेश्वर इन्द्र ने देखा कि यह अच्छा अवसर हाथ लगा है। वे योगबल से तुरन्त सोयी हुई दिति के गर्भ में प्रवेश कर गये। उन्होने वहाँ जाकर सोने के समान चमकते

गर्भ के वज्र से सात टुकड़े कर दिये। जब वह गर्भ रोने लगा, तब उन्होंने " मत रो, मत रो " कहकर उन सात टुकड़ों के भी और सात–सात टुकड़े कर दिये। उन सभी उन्चास ने इन्द्र से कहा – ' देवराज ' ! तुम हमें क्यों नष्ट करने पर तुले हो ? हम तो तुम्हारे भाई मरुद्गण हैं। इन्द्र ने कहा – अब मत डरो । अब तुम उनचास मिलकर हम पचास हो गये। अब तुम सभी मेरे साथ स्वर्ग में चलो।

स्कन्ध छ: के अन्तिम अध्याय 19 में पुंसवन–व्रत का विधि–विधान बताया गया है।

स्कन्ध सात के प्रथम अध्याय में जय–विजय की कथा का वर्णन है। राजा परीक्षित ने अपने मन का संदेह भगवान शुकदेव जी के सामने रक्खा – प्रभो ! भगवान तो समस्त प्राणियों के सुहृद् हैं ; फिर वे सामान्य मनुष्य जैसे अपने मित्र का पक्ष लेता है, उस प्रकार से इन्द्र के लिये दैत्यों का बध क्यों किया ?

श्री शुकदेव जी ने प्रश्न की श्रेष्ठता की प्रशन्सा करते हुये बोले – भगवान निर्गुण, अजन्मा, अव्यक्त होते हुये भी अपनी माया के तीन प्रधान गुण सत्व, रज, तम को समयानुसार स्वीकार करते हैं। सत्व गुण की वृद्धि के समय देवता एवं ऋषियों का, रजोगुण की वृद्धि के समय दैत्यों का और तमो गुण की वृद्धि के समय वे यक्ष एवं राक्षसों को अपनाते और उनका अभ्युदय करते हैं।

भगवान शुकदेव जी ने परीक्षित से नारद जी एवं युधिष्ठिर से संबन्ध रखने वाली एक कथा सुनायी। भगवान श्री कृष्ण से द्वेष रखने वाले शिशुपाल का जब बध किया उस समय राजा युधिष्ठिर ने देखा कि शिशुपाल सबके, देखते – देखते भगवान श्री कृष्ण में समा गया। शिशुपाल को यह गति कैसे मिली? इस रहस्य को जानने हेतु महर्षि नारद के समक्ष महाराज ने प्रश्न किया।

श्री नारद जी ने कहा – राजन! ऐसा मेरा दृढ़ निश्चय है कि मनुष्य वैरभाव से भगवान में जितना तन्मय हो जाता है उतना भक्तियोग से नहीं होता। देखो ! भृंगी कीड़े को लाकर दिवाल पर मिट्टी के घरौंदे में बंद कर देता है और वह भय से भृङ्गी का चिंतन करते – करते उसके जैसा भृङ्गी बन जाता है –

यथा वैरानुबन्धेन मर्त्यस्तन्मयतामियात् ।
न तथा भक्तियोगेन इति मे निश्चिता मति: ।।26।।
कीट: पेश स्कृता रुद्ध: कुडयायां तमनुस्मरन् ।
संरम्भभययोगेन विन्दते तत्सरूपताम् ।।27।। (अ.। स्क.7)

राजन ! तुम्हारे मौसेरे भाई शिशुपाल और दन्तवक्र दोनों ही विष्णु जी के मुख्य पार्षद थे। शाप के कारण वे प्रभावित हो कर जन्म लिया था। एक दिन सनकादि ऋषि वैकुण्ठ पहुँचे। उन्हे पाँच वर्ष के सामान्य बालक समझकर द्वार पालों ने उन्हें प्रवेश नही करने दिया। इस कारण से उन्होंने कुपित होकर असुर योनि प्राप्त करने तथा तीन जन्मो बाद शाप भोगकर

वैकुण्ठ में आ जाने का विधान बनाया था।

वे ही दोनों दिति के पुत्र हिरण्यकशिपु एवं हिरण्याक्ष दैत्य श्रेष्ठ हुये। बाराह अवतार में पृथ्वी का उद्धार करने के निमित्त हिरण्याक्ष को तथा भगवत् प्रेमी श्री प्रहलाद जी को उसका पिता हिरण्यकशिपु मार डालना चाहा तो उस समय नरसिंह अवतार लेकर उसे मारकर प्रहलाद् को स्नेह भाव देकर अपना अटल भक्त बना दिया। आगे चलकर वे दोनों दैत्य श्रेष्ठ विश्रवा मुनि के द्वारा केशिनी के गर्भ से राक्षस राज रावण और कुम्भकर्ण हुये। जिन्हें रामावतार में श्री रामचन्द्र ने वध किया। वे ही दोनो द्वारपाल जय–विजय तुम्हारी मौसी के लड़के शिशुपाल और दन्तवक्र के रूप में क्षत्रिय कुल में जन्मे। भगवान श्री कृष्ण के चक्र का स्पर्श प्राप्त होने से उनके सारे पाप नष्ट हो गये और सनकादि ऋषियों के शाप से मुक्त होकर पुनः पार्षद होकर भगवान के सामीप्य को प्राप्त हुये।

बैरभाव के कारण ही निरन्तर भगवान का चिंतन करने के कारण उनमें भगवान के प्रति तन्मयता हुआ फलस्वरूप मोक्ष को प्राप्त हुये।

सप्तम् स्कन्ध के दूसरे अध्याय में हिरण्याक्ष वध होने पर हिरण्यकशिपु ने अपनी माता को बड़ा मार्मिक आत्म–उपदेश किया है। आगे के लेख में वर्णित किया जावेगा।

महाभारत में दुर्योधन जब गंदर्भो द्वारा पशु समान बाँध कर ले जाया जा रहा था। युधिष्ठिर के कहने पर अर्जुन अपने युद्ध–कौशल से गन्दर्भ राज को हराकर दुर्योधन को छुड़ाया उस समय ग्लानि से भरा हुआ दुर्योधन प्राण त्यागने हेतु पर्योपासन पर बैठ गया। और कहा – मैं ! धर्म के स्वरूप को भली प्रकार जानता हूँ परन्तु मैं चाहकर भी धर्माचरण कर नहीं सकता। मेरे द्वारा किया हुआ कर्म बलात् अधर्म होता है। माया परवशता यही है।

●●●

मनवा के आँगन में....

सौ. डॉ. नमिता राकेश सिंह सिसौदिया, इन्दौर (म.प्र.)

मनवा के आँगन में गुरुवर पधारे हैं,
उनकी जगमग ज्योति से, फैले चहुँ ओर उजाले हैं।
आज भोर की लाली में
प्रभुजी की मुरतिया है,
उनके देव दर्शन को
बैठे हम भक्त जन सारे हैं
मनवा के आँगन में गुरुवर पधारे हैं,
उनकी जगमग ज्योति से, फैले चहुँ ओर उजाले हैं।

योग की शक्ति ने मोह जाल उड़ाया है,
जग-जीवन के सागर में
खुशियों का भंडार पाया है
मनवा के आँगन में गुरुवर पधारे हैं
उनकी जगमग ज्योति से, फैले चहुँ ओर उजाले हैं।

जीवन की शाम है
कोई ना आस है
इक तेरे साये में
सकल ब्रह्माण्ड समाया है।
सत-आनंद धन पाया है
मनवा के आँगन में गुरुवर पधारे हैं
उनकी जगमग ज्योति से, फैले चहुँ ओर उजाले हैं।

इक तेरे नाम की महिमा निराली है,
साँसों के इकतारे ने यही गीत गाया है
गुरुनाम ही जीवन का सार है
मनवा के आँगन में गुरुवर पधारे हैं,
उनकी ज्योति से फैले, चहुँ ओर उजाले हैं।

स्वास्थ्य

योग-आसन

भुजंगासन

अंगुष्ठनाभि पर्य्यन्तमधो भूमौ विनिन्यसेत् ।

करतलाभ्यां धरां धृत्वा ऊर्ध्व शीर्ष फणीवहि ।।

विधि – पैरों के अंगूठों से लेकर नाभि पर्य्यन्त का शरीर का हिस्सा जमीन में इस प्रकार जमा रहे, जैसे सर्प की पूँछ लम्बी जमी रहा करती है, नाभि तक शरीर को दृढ़ता से जमा करके दोनों हाथों के करतल को नाभि के बराबर में ही दृढ़तापूर्वक जमाकर नाभि के ऊपर के भाग छाती व शरीर को इस प्रकार ऊँचा उठा दें जिस प्रकार सर्प का फण उठा रहा करता है। क्योंकि इस विधि से किया हुआ यह सर्प की आकृति वाला दिखलाई देता है, अतः इसका नाम **भुजंगासन** अर्थात् सर्पासन है।

समय – साधारण शनैःशनैः अभ्यास करें।

लाभ – देहाग्नि वर्धते नित्यं सर्व रोग विनाशनम् ।

जागर्ति भुजंगो देवो साधनादभुजंगासनम् ।।

इस आसन के निरन्तर अभ्यास से देहाग्नि बढ़ती है। यह सभी रोगों का नाश करने वाला है। अधिक अभ्यास बढ़ाने से कुण्डलिनी जागृत होती है। इसके अतिरिक्त जो लोग इस सर्पासन को करते हुए जिह्वा निकाल कर ऊर्ध्व जिह्वा होकर नभो मुद्रा के ढंग से थोड़ा – थोड़ा वायुपान करते हैं, उनके फेंफड़े शुद्ध होते हैं और वे लोग दीर्घ आयु होते हैं व निरोग होते हैं। आजकल यौगिक व्यायाम–शालाओं में इस आसन का और भी दो प्रकार से अभ्यास कराया जाता है वह भी सब प्रकार से उपयुक्त हैं उनमें से –

उत्थितपाद भुजंगासन –

विधि – उत्थित पाद भुजंगासन में शेष विधि तो बिल्कुल पूर्वोक्त ही है, अन्तर केवल इतना है कि इसमें एक पैर सर्प की पूँछ की तरह जमीन में पड़ा रहता है और दूसरे पैर घुटने व जंघा पर्यन्त बिल्कुल सीधा ही ऊपर की ओर उठा लेते हैं। इसी प्रकार एक पैर का इस

प्रकार अभ्यास हो जाने के बाद दूसरे पैर को उठा लेते हैं व फिर धीरे–धीरे अभ्यास करके फिर जमीन में रख देते हैं जिस प्रकार शलभासन में बतलाया गया है। यदि यह पैर उठाने वाला व्यायाम करना पड़े तो क्रमश: दोनों पैरों को बदल–बदल कर करना चाहिये। अर्थात् दोनों पैरों का व्यायाम होना आवश्यक है। यह भी व्यायाम लाभप्रद है। कटिवात, यकृत, प्लीहादि सभी के लिये हितकर है।

<u>तीसरा प्रकार</u>

सरल हस्त भुजंगासन

विधि– इसमें भी शेष विधि पूर्वोक्त ही है। किन्तु अन्तर इतना है कि इसमें हाथों में किंचित भी मोड़ न आने दिया जाय, सीधे के सीधे फैलाये हुए रहें जिससे पूरा कटि भाग दोनों हाथों के बीच में आ जाय, फिर छाती व शिर को जितना भी नाभि पर्यन्त ऊँचा उठाया जा सके, उठा दें, जिससे वह छाती व शिर वाला भाग सर्प के फण की आकृति का बन जाय। इस अभ्यास के करने से नाभि पर काफी दबाव पड़ता है। अत: मेद नहीं बढ़ पाता।

●●●

जिस प्रकार कसौटी पर घिसते ही सोना और पीतल का भेद खुल जाता है, उसी प्रकार दु:ख–क्लेश और विपदाओं में पड़ने पर सच्चे साधु और पाखण्डी का भेद खुल जाता है।

– श्री रामकृष्ण परमहंस

योग और स्वास्थ्य

– डॉ. जे.पी. शर्मा, गुरु आशीष सदन, पौंटा साहिब, हि.प्र.

जिस प्रकार भूख मिटाने के लिये भोजन की आवश्यकता है, उसी प्रकार भोजन सामग्री में विटामिनों की आवश्यकता है। विटामिन हमारे शरीर को स्वस्थ तथा तरोताजा रखने में महत्वपूर्ण योगदान करते हैं। उसी प्रकार मन को खुश रखने के लिये तरह–तरह के हास्य उल्लास के साधन जुटाते हैं। विटामिनों की प्राप्ति तो साग भाजी, फलों, अनाजों आदि से हो जाती है परन्तु हास्य उल्लास के लिये हमें अपने अन्तर्मन को ही जगाना पड़ता है। अपने मन को प्रफुल्लित, आनन्दमयी, खुश रहने के लिये विभिन्न तौर तरीकों को अपनाने की आवश्यकता होती है, उन तौर तरीकों को आमोद प्रमोद अथवा मनोरंजन के साधन कहकर पुकारा जाता है। इस लेख में मनोरंजन के लिये मैंने विटामिन " ऐम " की सज्ञा दी है। मनोरंजन, मन को शांत, प्रसन्न रखने की प्रक्रिया है। जब मन शान्त होता है तब मनुष्य स्वाभाविक रूप से स्वस्थ रहता है। कहते हैं – " मन चंगा तो कठौती में गंगा " । योगेश्वर श्री कृष्ण जी महाराज ने कहा है –

" प्रसादे सर्वदु :खानां हानिरस्योपजायते।

प्रसन्नचेतसो ह्याशु : बुद्धि पर्यवतिष्ठते ।। " (गीता, 2/65)

अर्थात् मन की निर्मलता से सम्पूर्ण दु:खों का अभाव हो जाता है तथा प्रसन्नचित्त वाले पुरुष की बुद्धि शीघ्र ही भली प्रकार स्थिर हो जाती है।

हमारे जीवन में हास्य तथा उल्लास का महत्वपूर्ण स्थान है। हँसना, मधुर–मधुर बोलना मनुष्य का विशेष गुण माना जाता है। खूब जोर से हँसने से सारा शरीर क्रियाशील बन जाता है तथा शरीर के सभी अंग सुचारू रूप से अपना कार्य करने लगते हैं। स्वस्थ रहने के लिये हँसना रामवाण की तरह कार्य करता है। हंसना स्वयं में स्वास्थ्य के लिये टानिक की तरह है। अत: मनुष्य को हंसने हँसाने के लिये सभी मनोरंजन के साधन जुटाने चाहिये। मन खुश बना रहे तब सब कोई प्रसन्नचित मुद्रा में दिखाई देता है। हंसने से मनोवैज्ञानिक प्रभाव मानव पटल पर पड़ता है तथा शरीर का रोम रोम झंकृत हो उठता है। मुस्कराना भी एक कला है। मन्द–मन्द मुस्कान सभी को आकर्षित करती है। संगीत से प्राणी आत्म–विभोर हो उठता है, जैसे वीणा के तार झंकृत होते हैं उसी प्रकार हमारा शरीर झंकत हो उठता है। प्रसन्नता से रोगी तत्व शरीर से बाहर निकलते हैं अथवा शरीर के अन्दर हैं उनका अस्तित्व समाप्त हो जाता है। मनुष्य तो क्या पशु पक्षी भी संगीत से आत्म विभोर तथा गद गद हो उठते है। शरीर में शक्ति संचार हो उठता है। मोर जब नाचता है तब उसका सारा शरीर कॉंप उठता है तथा जोर जोर से पीयु–पीयु की तान गाने लगता है। हसने से ईर्ष्या, कुटिलता, कपटता, तथा दुर्भावना रूपी विषों का प्राय: नाश हो जाता है। हंसने के साथ नाच तथा गाना भी साथ – साथ चले तब तो सोने में सुगन्ध का काम

होता है। इन्हीं प्रसन्नचित करने वाली सभी क्रियाओं को मनोरंजन कहा जाता है। मन प्रसन्न रखने के साधन ही मनोरंजन कहे गये हैं। विटामिन ऐम कहीं बाजार में खरीदने को नहीं मिलेगा। आप के पास हर–पल साथ रहेगा। जब चाहो इसका भरपूर उपयोग करलें। हाँ, विटामिन ऐम की मात्रा लेते समय पेट भरा हुआ नहीं होना चाहिये। अगर लेना ही पड़ जाए तो जरा धीरे – धीरे इसका उपयोग करें, थोड़ी देर में पेट खाली महसूस होने लगेगा।

हँसने से दिल बाग बाग तथा हल्का हो जाता है तथा मानसिक तनाव से मुक्ति मिलती है। स्वास्थ्य के लिये हँसना तुरन्त दवा की तरह काम करता है। हँसने से गुस्सा शान्त हो जाता है। रक्त–चाप सामान्य स्तर तक पहुँच जाता है। सारा शरीर रोमांचित हो उठता है। परन्तु आवश्यकता इस बात की है हम किसी पर हँसने की बजाय उसके साथ हँसना सीखें तभी हँसने से वास्तविक लाभ प्राप्त हो सकेगा। व्यंगात्मक हँसना तथा साधारण रूप से हँसने में अन्तर होता है। जीवन थोड़ा सा है इसे हँसकर या रोकर गुजारा जाता है।

हँसना स्वास्थ्य वर्धक है। हँसने से चिर यौवन बना रहता है। मन का उल्लास प्राणी को आत्मिक शाँति प्रदान करता ही है वरन रोगों से रक्षा भी करता है। हास्य तथा उल्लास नारी का श्रृंगार होता है। मनुष्य हँसते हुये स्वभाव से कठिन से कठिन परिस्थितियों का सामना कर सकता है। अतः स्वभाव बनाइये कि हर समय हर पल आप प्रफुल्लित बने रहें, इससे स्वस्थ तथा तनाव मुक्त बने रहेंगे।

किसी ने ठीक ही कहा है कि – हँसी की सुन्दर भूमि पर यौवन के फूल खिलते हैं तथा मनुष्य के जीवन को सुगन्ध से भर देते हैं। अतः अपने मन मंदिर में हँसने की सुन्दर सी बगिया लगाइये जिससे हँसी की सुगन्ध दूसरों तक पहुँच सके जिससे चारों तरफ का वातावरण महकता रहे।

हँसी के अमृतरूपी रस से प्राणी दीर्घजीवी बनता है। हँसी एक ऐसा परिधान है जो हर सभा, संगठन तथा हर अवसर पर पहना जा सकता है, हर मौसम इसके अनुकूल होता है। हँसने के बारे में कहा गया है –

When you weep. your troubles heep
When you Smile. your troubles reconsile
When you laugh. your troubles are off.

अर्थात जब आप रोते हो, तब आपदाओं, कष्टों, तथा परेशानियों के ढेर आपके सामने लग जाते हैं। जब आप मुस्कराते हो तब आपदायें, कष्ट तथा परेशानियाँ कम होती जाती हैं, किन्तु जब आप हँसते हो, तब आपकी सारी आपदायें तथा मुसीबतें छू मन्तर हो जाती हैं।

अतः अपने सुन्दर स्वास्थ्य के लिये हर पल हर क्षण हँसने के अवसर तलाशते रहें तभी आप प्रसन्नचित तथा प्रफुल्लित बने रह पायेंगे। हँसने से मन की सारी चिन्तायें भाग जाती हैं। हँसने से शरीर में विभिन्न प्रकार के हारमोन पैदा होते हैं जिनका शरीर विकास में महत्वपूर्ण

योगदान होता है। एपेनीफेन तथा डोपामाइन हारमोन हंसी–उल्लास से उत्पन्न होते है जो दर्दनाशक होते हैं तथा एलर्जी कारक रोगों से मुक्ति दिलाते हैं। योग की भाँति ही हँसना एक व्यायाम है। हँसने से शरीर की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है। हँसी का जोरदार ठहाका लगाने से रक्त विकार दूर होते हैं तथा कोलेस्ट्राल की मात्रा कम हो जाती है। हँसने से हृदय विकार दूर भागते हैं।

ठहाके लगाने से पाचन क्रिया सुदृढ़ होती है तथा फेंफड़ों की क्रिया शीलता बढ़ती हैं जिससे श्वास–दमा, खाँसी में आराम मिलता है। शरीर के सारे अंगों का भरपूर व्यायाम हो जाता है। मन सुन्दर स्वस्थ तथा तनाव मुक्त रहता है।

हँसी से मन की मैली ग्रंथियाँ खुल जाती हैं अर्थात मन मुटाव दूर हो जाता है। हँसी से अपने को तो शीतलता मिलती ही है अपितु हँसी का एक फुव्वारा दूसरों को भी सुन्दर स्वस्थ बनाता है। हँसने से शरीर के भीतरी अंगों की साफ सफाई हो जाती है। खिलखिला कर हँसने से मनुष्य निरोगता प्राप्त करता है।

अनुकूल तथा प्रतिकूल परिस्थितियाँ तो प्राय: सभी के जीवन में आया करती हैं परन्तु प्रतिकूलता में हम खाना पीना, भोजन करना तो नहीं त्यागते। इसी प्रकार हमें हर स्थिति में हँसने – हँसाने की आदत डालनी चाहिये। सदैव मुस्कराते रहना सुन्दर स्वास्थ्य की दवा होती है।

आज मनोविज्ञान ने सिद्ध कर दिया है कि उन्मुक्त रूप से हँसना जहाँ शारीरिक स्वास्थ्य के लिये आवश्यक है, वहीं वह मानसिक स्वास्थ्य तथा मन को सन्तुलित बनाये रखने के लिये भी उतना ही आवश्यक है। अधिकांश रोगों तथा दु:खों का मूल कारण समाज तथा लोगों में व्याप्त असन्तोष ही है। यदि हमें असन्तोषरूपी आग से बचना है तो हमें जीवन के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण अपनाना ही होगा। जीवन को हास्य और उल्लास के साथ जीना होगा। आनन्दित तथा प्रफुल्लित रहना ही अच्छे स्वास्थ्य की कुंजी है। संसार का हर जीव आनन्दित रहना चाहता है, यहाँ तक कि पेड़ पौधे, फसलें आदि भी प्रफुल्लित रहने की चाहत करते हैं। मुर्झाये पौधे पानी के प्रभाव से सचेत हो उठते हैं तथा प्रसन्नचित दिखाई देने लगते हैं। अत: प्रसन्नचित रहना प्रकृति का गुण है।

विनोद प्रकृति आत्मोपचार का मूल तथा सर्वोत्तम माध्यम है। संसार के जितने भी क्रियाशील एवं पुरुषार्थी व्यक्ति हुये हैं, सभी में अनवरत क्रियाशीलता, स्वाभाविकता, स्फूर्ति तथा सहज विनोद प्रवृति समान रूप से विद्यमान थी। महात्मा गाँधी तथा प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइन्सटाइन भी हँसी के सम्पर्क में आना नहीं भूल पाते थे। डॉ. राम मनोहर लोहिया की हँसी उनके अनुयाइयों को मुग्ध कर देती थी। डॉ. रवीन्द्रनाथ टैगोर की मुस्कराहट से लोग अछूते नहीं रहे। इसी प्रकार श्री चन्द्रशेखर आजाद अपनी पूर्ण निर्मल हास्य के लिये प्रसिद्ध थे। हास्य कवि काका हाथरसी की कविताओं में हास्य रस भरा होता था। हरियाणा के सुरेन्द्र शर्मा की कविताओं में हास्य पुट होता है। अत: हँस मुख अथवा हास्य एक जीवन जीने की कला है।

प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि शोकाकुल वातावरण तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में भी इस विनोद भाव को कैसे बनाये रखा जा सकता है ? इसके प्रत्युत्तर में यही कहा जा सकता है कि परिस्थितियों की जटिलता नहीं अपितु मनोभूमि की जटिलता ही मनुष्य से उसकी सहजता तथा हँसी को छीन लेती है। उद्विग्नताजनित मानसिक तनाव, मानसिक दुर्बलता का परिणाम है। यही कारण है कि रूखा–सूखा भोजन करने वाला साधारण मनुष्य प्रसन्न तथा धन संपन्न वैभव शाली व्यक्ति चिड़चिढ़ा, बैचने तथा अधीर रहा करता है।

अनुकूल तथा प्रतिकूल परिस्थितियाँ तो हर व्यक्ति के जीवन में आया करती है, परन्तु जो व्यक्ति केवल प्रतिकूलताओं में विचार करता है, उसे हताशा, और पीड़ा के अतिरिक्त और कुछ नहीं प्राप्त हो पाता। जब कि अपनी अनुकूलताओं पर विचारशील व्यक्ति यह सोचा करता है कि जो कुछ मेरे पास है, इतना तो बहुतसों के पास भी नहीं है। अत: अभाव में खीजने तथा कुढ़ने की क्या जरूरत है ? ऐसा सोचने वाला व्यक्ति हर परिस्थिति में खुश रहा करता है।

विनोद वृत्ति जहाँ स्वस्थता की निशानी है, वहीं बात – बात पर व्यंग कसने की आदत हीन भावना तथा मानसिक विकारों का परिणाम होता है। हास–परिहास का वातावरण तो प्रसन्नता दायक होता है, परन्तु दूसरों पर उपहास करना सदा कष्टकारी तथा हानिकारक होता है। इस लिये कहा जाता है – " लड़ाई की जड़ हाँसी और रोग की जड़ खाँसी "। उपहास दूसरों पर उनकी कमजोरियों पर अंगुली उठाता है जिससे व्यक्ति तिलमिला जाता है जब कि विनोद अपनी खुशियों को दूसरों में बांटता है। जिससे दोनों पक्षों को आनन्द ही आनन्द मिलता है।

शोकाकुल तथा गमगीन परिस्थितियों में हँसने की कोई सोच ही नहीं सकता क्यों कि हँसी तो अन्त:करण की गहराइयों से निकलती है।

हँसी, मन के सुखद भावों को बाहर लाने का सर्वोत्तम साधन होता है, जो हँसने वाले व्यक्ति को ही प्रसन्न नहीं करती अपितु आस पास के व्यक्तियों को भी प्रसन्न करती है। जब किसी के दुर्व्यवहार से कष्ट या चोट पहुँचती है तो उस समय एक मात्र हँसी सारे क्रोध और चिन्ता को दूर कर देती है। मुस्कान तथा हंसी मन में आनन्द–उल्लास भर देती है जिससे सारा वातावरण सभी को शीतल बना देता है। अत: हंसी से मन के मैल घुल जाया करते हैं।

मनोवैज्ञानिक चिकित्सकों का निर्णय है कि हंसने से मनुष्य के मन तथा मज्जा–तन्तुओं को एक ऐसी चुस्ती और स्फूर्ति मिलती है, जो शरीर की, मन की थकान तथा चिन्तायें दूर कर देती है। हंसी तो एक ऐसा मनोवैज्ञानिक व्यायाम है, जो मन को ही नहीं अपितु सारे शरीर के विभिन्न अवयवों तथा माँसपेशियों को भी अनावश्यक दबाव से मुक्त रखता है।

हँसने से शरीर में खून बनता है, शरीर को अतिरिक्त उर्जा मिलती है, पाचक तंत्र, श्वसन तंत्र तथा ह्रदय तंत्र सुदृढ़ रहते हैं। विजातीय तत्व शरीर से बाहर निकलते हैं। शरीर में रोगों से लड़ने की प्रतिरोधकता बढ़ती है। स्वास्थ्य हितकारी हारमोनों तथा अन्य रसायनों की शरीर में वृद्धि होती है। माँसपेशियों में खिंचाव पैदा होने से नींद अच्छी आती है। मन निर्मल तथा

स्वस्थ बन जाता है जिससे मन के दूषित विकार बाहर हो जाते हैं। हँसमुख तथा विनोद शील पुरुष को समाज में उपयुक्त स्थान मिलता है। विनोद परायण व्यक्ति से मानव ही नहीं अपितु जानवर भी उससे प्यार करते है। अत: आवश्यकता इस बात की है कि हम चौबीस घंटों में कम से कम चौबीस मिनट प्रतिदिन हंसने की आदत डालें। अपने पूरे परिजनों के साथ चाय भोजन के समय कुछ ऐसा करें जिससे सभी ठहाकामार कर हँसी, खिल खिलायें ऐसा करने से शरीर के उत्तेजित होते हैं, साथ ही आपस की ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, कलह दूर होती है तथा घर का वातावरण प्राय: शान्त बना रहता है। इसलिये आप मुस्कराने की आदत डालें इससे एक दूसरे के प्रति विश्वास की भावना बनी रहती है। यही है विटामिन " ऐम " का कमाल। इसका भरपूर उपभोग करें तथा जीवन को सुन्दर स्वस्थ तथा खुशहाल बनायें।

● ● ●

चकमक पत्थर अगर सैकड़ों साल पानी में पड़ा रहे फिर भी उसके भीतर की अग्नि नष्ट नहीं होती। पानी से बाहर निकालकर उस पर चोट मारते ही उसमें से चिनगारियाँ निकलने लगती हैं। यथार्थ विश्वासी भक्त भी इसी तरह का होता है। हजारों अपवित्र विषयी लोगों से घिरा रहने पर भी उसके विश्वास या भक्ति की तनिक भी हानि नहीं होती। भगवान का नाम भगवत्प्रसंग सुनते ही वह प्रेम में मत्त हो जाता है।

– श्री रामकृष्ण परमहंस

प्राणायाम - आरोग्य और दीर्घजीवन

— श्री दिनेश चन्द शर्मा, आगरा

शरीर की रक्षा के लिए जिस प्रकार अन्न की उपयोगिता है और रोगों के नाश के लिए औषधियों की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार शरीर के बाहरी और भीतरी रोगों के नाश के लिए प्राणायाम का प्रयोग बताया गया है। शास्त्रों में ऋषियों ने आरोग्य प्राप्ति के लिए अनेक उपाय बताये है, उनमें प्राणायाम की साधना एक महत्वपूर्ण उपाय है। इससे शरीर की शुद्धि और आरोग्य पूर्वक दीर्घ जीवन की प्राप्ति होती है। रोग नाश के अलावा मानसिक सन्तुलन रखने में भी प्राणायाम बहुत उपयोगी है।

प्राणायाम के निरन्तर अभ्यास से चित्त में एकाग्रता आती है। शरीर में फेफड़ों की शक्ति बढ़ती है और नाड़ी चक्रों में चैतन्यता आ जाती है। प्राणायाम से शरीर स्वस्थ और निरोग रहता है। प्राणायाम योगशस्त्रो में बताई पद्यति से अपने गुरुदेव, विशेषज्ञ या अनुभवी योग शिक्षक के निर्देशन में करना चाहिए। अन्यथा मनमाने ढँग से प्राणायाम करने से अनेक रोग होने की सम्भावना रहती है। अतः विशेषज्ञ के मार्ग दर्शन में प्राणायाम का अभ्यास करना हितकारी है।

प्राणायाम मात्र साँस खींचना और छोड़ना नहीं है। यह तो उसकी प्रारम्भिक परिपाटी है। योग के आठ अंगों (यम, नियम, आसन आदि) में प्राणायाम महत्वपूर्ण अंग है। शरीर और मन प्राणशक्ति से चलते हैं। प्राणवायु पर नियंत्रण करने की विधि को जानने वाला अपने शरीर और मन की प्रत्येक क्रिया पर नियन्त्रण रखने की क्षमता प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार के सभी विधिविधान 'प्राणायाम' के अन्तर्गत आते हैं। मस्तिष्क की क्षमता बढ़ाने, तेज दिमाग, स्मरण शक्ति, कुशाग्रता, दूरदर्शिता, सूझ–बूझ और मानसिक विशेषताओं को प्राणायाम के द्वारा बढ़ाया जा सकता है।

प्राणायाम में प्राणों का नियमन करना होता है। प्राणों के नियमन से शरीर निरोग होता है और मन की एकाग्रता आती है। सभी प्राणी प्राणशक्ति से जीवित हैं। इसीलिए उपनिषदों में प्राण को ब्रह्म बताया गया है। प्राण ही जीवन शक्ति है। प्राण मात्र श्वास नहीं है। ब्रह्म चेतना की ऊर्जा अर्थात् विश्व व्यापी शक्ति चेतना ही प्राण है। प्राण ही जीवन है। इस प्राणशक्ति के महत्वपूर्ण विज्ञान को योग साधना के द्वारा प्रत्यक्ष अनुभव किया जा सकता है। प्राणायाम के अभ्यास से साधक में ऊर्जा का अनन्त स्रोत प्रवाहित होने लगता है। शरीर की शुद्धि और आरोग्य के साथ दीर्घ जीवन की प्राप्ति होती है।

अधिकांश व्यक्ति गहरी सांस लेने के अभ्यस्त नहीं होते हैं। वे उथली सांस लेते हैं जिससे फेफड़े का लगभग एक चौथाई भाग ही कार्य करता है और शेष तीन चौथाई क्रियाशील

नहीं हो पाता है। प्राणायाम से फेफड़े बलिष्ठ होते हैं, रक्त संचार की व्यवस्था सुधरने से विभिन्न रोग दूर होते हैं और प्राणायाम के अभ्यासी को आरोग्य और दीर्घ आयु का लाभ मिलता है।

प्राणायाम शब्द दो पदों के योग से बना है – प्राण और आयाम अर्थात् प्राणवायु को रोकना या प्राणवायु का निरोध करना प्राणायाम बताया गया है। प्राणायाम आसन बद्ध होकर करना चाहिए। योग दर्शन में भगवान पतञ्जलि ने इस सम्बन्ध में सुस्पष्ट निर्देश दिये हैं।

योगशास्त्र के ग्रन्थों में मानव शरीर में वृत्ति के कार्य भेद से प्राणवायु को मुख्य तया दस नामों से सम्बोधित किया गया है– प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनन्जय, ये दस प्रकार के प्राणवायु बताये गये हैं। स्कन्द पुराण में कहा गया है कि सब ओर विचरण करने वाले प्राणादि वायु का गुरु के द्वारा उपदिष्ट रीति से धारण किया जाना प्राणायाम है।

प्राणायाम से मनुष्य स्वस्थ और निरोग रहकर मन और इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर सकता है। मन बहुत चंचल है। परन्तु प्राण के निरोध से मन की चंचलता को रोकना सुगम होता है। अतः मनुष्य जीवन के लिए प्राणायाम बहुत महत्वपूर्ण है। एक स्वस्थ व्यक्ति में श्वास की प्रक्रिया एक मिनट में पन्द्रह बार होती है। साधारण रूप से प्राणायाम किसी बीजमन्त्र, या ओंकार जप अथवा गुरुमंत्र के साथ करना चाहिए। परन्तु प्रारम्भ में प्राणायाम गिनती से ही करना चाहिए। पूरक, कुम्भक और रेचक में गिनती का अनुपात 1–4–2 का रखना बताया गया है। प्राणायाम का समय भी धीरे – धीरे बढ़ाना चाहिए।

प्राण पर नियन्त्रण करना महान तप है। मनुस्मृति में कहा गया है कि जिस प्रकार से सोना, चाँदी आदि धातुओं के मल तपाने से जल जाते हैं, इसी प्रकार प्राणों पर नियन्त्रण करने से इन्द्रियों के मल जल जाते हैं। अतः धैर्य पूर्वक प्राणायाम का नियमित अभ्यास करना चाहिए। प्राणायाम का साधक युक्ताहार – विहार होकर प्राणवायु पर नियन्त्रण करते हुए योग मार्ग में उच्च स्थिति को प्राप्त कर लेता है। प्राणायाम करने से साधक को ज्ञानदाप्ति हो जाने पर दूरदर्शन, दूरश्रवण, दूरस्पर्शन आदि क्रियाएँ स्वभाव से ही होने लगती हैं।

योगदर्शन के आचार्यों ने प्राणायाम के आठ विशेष भेद बताये हैं –

सूर्यभेदनमुज्जायी सीत्कारी शीतली यथा ।

भस्त्रिका भ्रामरी मूर्छा प्लाविनीत्यष्ट कुम्भका ।।

सूर्यभेदन, उज्जायी, सीत्कारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा और प्लाविनी ये आठ प्रकार के प्रमुख कुम्भक बताये गये हैं।

सूर्यभेदन प्राणायाम करने से योगी के शरीर में अग्नितत्व की वृद्धि होती है। वायु और कफ के रोगों का नाश होता है। उज्जायी प्राणायाम कफ का निवारण, उदर रोग, मन्दाग्नि आदिको दूर करने वाला, धातुरोगों को नष्ट करने वाला है। सीत्कारी प्राणायाम के अभ्यास से साधक के शरीर में भूख, प्यास,और आलस्य नहीं रहता। योगी योगिनी चक्र को वश में करने में

सक्षम हो जाता है।

शीतली प्राणायाम में जिह्वा को काक की चोंच की तरह गोल मोड़कर वायु का आकर्षण कर कुम्भक करके शनैः-शनैः दोनों नासारन्ध्रों से वायु को निकालना चाहिए। शीतली प्राणायाम के अभ्यास से गुल्म, प्लीहा आदि व ज्वर, पित्त आदि अनेक विघ्नों का नाश होता है।

भस्त्रिका प्राणायाम वात-कफ का नाश करने वाला और कुण्डलिनी शक्ति के बोध के लिए बहुत उपयोगी बताया गया है। भ्रामरी प्राणायाम करने से नाद के प्रभाव से योगी को आनन्द का विशेष अनुभव होता है। मूर्छा प्राणायाम करने से स्वभाव से ही मनो मूर्च्छा होने लगती है और योगी का मन एकाग्र होने लगता है।

प्लाविनी प्राणायाम के अभ्यास से योगी पद्मपत्र वत् (कमल के पत्ते की तरह) जल में तैरने की क्षमता प्राप्त कर लेता है। इस अष्ट विधि प्राणायाम का हमारे पूज्य ऋषियों-योगियों ने ग्रन्थों में विस्तार से वर्णन किया है। शास्त्रों में प्राणायाम से बढ़कर किसी और तप को प्रधानता नहीं दी गई है। अनुभवी गुरु के मार्ग दर्शन में इनका अभ्यास करना चाहिए।

● ● ●

मन की गली में झाँक ले

लेखक – विजय शर्मा, सहारनपुर

तर्ज – मिलती है जिन्दगी में

मन की गली में झाँक ले , होगा प्रभु मिलन
गुरु दर पे सिर झुका ले , होगा प्रभु मिलन

मन दर्पण की धूल को बुद्धि से साफ रख
उजले मन दर्पण में प्रभु को निहार ले
मन की गली ......

मन रथ में जुड़े घोड़ों को संयम में बाँध रख
गुरुवाणी से तू मन की गति को सुधार ले
मन की गली ......

धोखा ना दें किसी को इस मन को साफ रखे
कोई कर्म ना ऐसा कर जिसका उधार दें
मन की गली ......

थोड़ा सा मिला जीवन उसको सजा के रख
अनमोल घड़ी में तू प्रभु को पुकार ले
मन की गली ......

स्वार्थ का भाव तज दें उपकार भाव रख
छीना जो धन किसी का प्रभु जी हिसाब लें
मन की गली ......

प्रभु राम लाल जी को ह्रदय में बिठाके रख
यम मार से बचा के सतलोक वास दें
मन की गली ......

● ● ●

योग कुण्डलिनी उपनिषद् के आधार पर

हेतु द्वयं हि चित्तस्य वासना च समीरणः।
तयो विनष्ट एकस्मिस्तद्द्वावपि विनश्यतः ।।

तयोरादी समीरस्य जय कुर्यान्नरः सदा।
मिताहारश्चासनं च शक्तिचालस्तृतीयकः ।।

एतेषां लक्षणं वक्ष्ये श्रृणु गौतम सादरम्।
सुस्निग्ध मधुराहारश्च तुर्या शाव शेषकः ।।

भुज्यते शिव संप्रीत्यै मिताहारः स उच्यते।
आसनं द्विविध प्रोक्तम् पद्मं वज्रासनं तथा ।।

ऊर्वोरुपरि चेद्धत्ते उभे पादतले यथा।
पद्मासनं भवेदेतत्सर्व पाप प्रणाशनम् ।।

चित्त की अस्थिरता के दो ग्रहण हेतु होते हैं, एक वासना, दूसरा श्वास (प्राण) इनमें से एक के नष्ट हो जाने पर दूसरा भी नष्ट हो जाता है। इसलिए साधक को पहले प्राण को वश करना चाहिए और इसके लिए मिताहार, आसन और शक्ति को चालन करना चाहिए। हे गौतम अब मैं तुझको उनके लक्षण बताता हूँ, उन्हें तू ध्यान पूर्वक सुन। सर्व प्रथम स्निग्ध और मधुर आहार करना चाहिए तथा पेट के एक चौथाई भाग को खाली छोड़ देना चाहिए। इस प्रकार का भोजन भगवान के उद्देश्य से किया जाय, यही मिताहार है। आसनों में दो प्रकार के मुख्य हैं– पद्मासन और वज्रासन। दोनों जाँघों पर एक– दूसरे पैर के तलवों को सीधा रखने से पद्मासन होता है, जो सब पापों का नाश करने वाला है।

वामाङ्घ्रिमूलं कन्दाधः अन्यं तदुपरि क्षिपेत्।
समग्रीव शिरः कायो वज्रासमनमिति ।।

कुण्डल्येव भवेच्छक्तिस्तां तू संचालयेद्बुधः।
स्वस्थानादाभ्रुवोर्मध्यं शक्ति चालन मुच्यते ।।

तत्साधने द्वयं मुख्यं सरस्वत्यास्तु चालनम्।
प्राणरोध मथाभ्यासा दृज्वी कुण्डलिनी भवेत् ।।

तयोरादी सरस्वत्याश्चालानं कथयामि ते।
अरून्धत्य कथिता पुराविद्भिः सरस्वती ।।

यस्याः संचालने नैव स्वयं चलति कुण्ड्ला।
इडायां वहति प्राणे वद्धवा पद्मासनं दृढ़म् ।।

बाये पैर की एड़ी को योनि स्थान में रखे और दाहिने की एड़ी उसके ऊपर रखें, गर्दन तथा शिर को समान और सीधा रखे तो यह वज्रासन होता है। कुण्डली ही मुख्य शक्ति है, ज्ञानी साधक उसको चालन करके दोनों भौहों के मध्य में ले जाता है तो वही शक्ति चालन है। कुण्डलिनी को चलाने के दो मुख्य साधन हैं, सरस्वती का चालन और प्राण निरोध, अभ्यास द्वारा लिपटी हुई कुण्डलिनी सीधी हो जाती है। पहले तुझको सरस्वती के चालन के विषय में समझाता हूँ। प्राचीनता वाले सरस्वती को अरून्धनी कहते हैं। इस सरस्वती नाड़ी का चालन करने से कुण्डलिनी अपने आप चलने लगती है। इनके लिए जब श्वाँस इड़ा (बाँयी) नाड़ी से बहता हो तो पद्मासन लगाकर बैठें।

● ● ●

जिसने एक बार असल मिश्रि का स्वाद चखा है, उसे क्या सस्ते गुड़ का स्वाद भाएगा? जो एक बार ऊँची अटारी में सो चुका है, क्या उसे फिर गन्दी झोपड़ी में सोना अच्छा लगेगा? इसी तरह जिसने एक बार ब्रह्मानन्द का स्वाद चखा है, वह क्या कभी तुच्छ विषयानन्द में रममाण हो सकेगा?

– श्री रामकृष्ण परमहंस

योग माया

प्रेषक–जनक कुलश्रेष्ठ

सत्, रज और तम इन तीनो गुणों की साम्यावस्था को अव्यक्त मूल प्रकृति कहते हैं। चेतन तत्व ब्रह्म में जब ''एकोऽहम् बहुस्यामि'' का ईक्षण (संकल्प या इच्छा) हुआ तो जड़ अव्यक्त मूल प्रकृति मे क्षोम उत्पन्न हुआ। जड़ तत्व में व्यवस्थापूर्वक क्रियाचेतन तत्व की सन्निधि से होती है। चेतन तत्व अर्थात् उस ब्रह्म के सन्निधि मात्र से जड़ तत्व अर्थात् गुणों में क्षोभ उत्पन्न होकर विषमता उत्पन्न होती है। यही उस ब्रह्म की योग माया है। उस अव्यक्त मूल प्रकृति को ही आदि गुरु शंकराचार्य जी ने योग माया से व्यक्त किया है।

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमाया समावृतः।
मूढ़ोऽयं नाभिजानाति लोको मामजम व्ययम्॥

गीता 7/25

भगवान श्री कृष्ण जी अर्जुन से कहते हैं कि अज्ञानी पुरुष मेरी इस योगमाया के मेरे स्वरुप को नहीं जानते हैं। परंतु अस्मितानुगत समाधि की अन्तिम अवस्था में पहुंच कर योगी उस सूक्ष्माति सक्ष्म ब्रह्म तत्व की अनुभूति करते हैं, जिसे विवेक ख्याति कहा जाता है।

''विवेक ख्यातिरविप्लता हानोपाय''।

योगी सम्प्रज्ञात समाधि की वितर्कानुगत, विचारानुगत तथा आनन्दानुगत समाधियों की सिद्धि करके अस्मितानुगत समाधि में प्रवेश करता है। तब उसको अस्मिता का साक्षात्कार होता है अर्थात् पुरुष (आत्मा) में प्रतिबिम्बित चित्त का स्पष्ट रूप से अनुभव होने लगता है। प्रारम्भ में अहं वृत्ति रहती है। शनैः शनैः अभ्यास करने से यह वृत्ति भी समाप्त हो जाती है। इस स्थिति में आकर योगी पुरुष (आत्मा) और चित्त (प्रकृति) के भेद को भली–भांति जान लेता है इस अवस्था को ही विवेक ख्याति कहते हैं। इसे ही विवेक+ख्या अर्थात् विवेक ज्ञान कहते हैं। विवेक के जाग्रत हो जाने पर योगी यह जान लेता है कि शरीर, इन्द्रियों, मन, बुद्धि, चित्त आदि प्राकृतिक तत्व मुझ चेतन पुरुष (आत्मा) से भिन्न हैं। उक्त प्राकृतिक तत्व विकारी और परिणामी हैं, जबकि मैं चेतन तत्व (आत्मा) अविकारी और अपरिणामी है। अवस्था में आकर योगी उस सूक्ष्मगति सूक्ष्म ब्रह्म तत्व की अनुभूति करता है।

इस योगमाया के अन्तर्गत ही महामाया और माया समाहित है। महामाया जीव को ऊर्ध्वगति प्रदान करती है और माया जीव को अधोगति प्रदान करती है।

ब्रह्म तत्व के ईक्षण करने से गुणों की साम्यावस्था में विषमता उत्पन्न होती है। इस विषमावस्था का प्रथम विषम परिणाम यह तत्व है। यही उस ब्रह्म का लिङ्ग रुप है। और यही सृष्टि का बीज रूप है। इसी से सारी सृष्टि की उत्पत्ति होती है।

यही महातत्व योग दर्शन के अनुसार समष्टि तथा व्यष्टि चित्त कहलाता है। सांख्यदर्शन के अनुसार समष्टि बुद्धि और व्यष्टि बुद्धि कहलाती है। वेदान्त में सामष्टि चित्त को हिरण्यगर्भ और व्यष्टि चित्त को तैजस कहते हैं। गीता में इसी को महद ब्रह्म कहा है और ब्रह्म उस महद्ब्रह्म में चेतन रूप बीज प्रदान करता है।

मम योनिर्मक्दब्रह्म तस्मिनार्भं दधाम्यहम्

ब्रह्म की निज शक्ति योगमाया के अनुसार ही ब्रह्म की अध्यक्षता में प्रकृति के रूप में जगत की रचना करती है।

मयाध्यक्षेण प्रकृति सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्त्तते।।

प्रकृति अर्थात् ब्रह्म की निजशक्ति योगमाया ही सृष्टि की रचना करती है। ब्रह्म के ईक्षण करने से प्रकृति में प्रथम वर्तन होता है अर्थात् हलचल होती है। उसके पश्चात् प्रकृति के गुणों में परिवर्तन होता है। इसी परिवर्तन के परिणाम स्वरूप महतत्व, अहंकार और अहंकार के तमोगुण से पंच तन्मात्राएं (शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध) उत्पन्न होती है। इन तन्मात्राओं से पंच महाभूतों– आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी की उत्पत्ति होती है। कालान्तर में जब महाप्रलय का समय उपस्थित होता है, तब इस प्रकृति में विपरिवर्तन होता है अर्थात् सृष्टि अपनी मूल अव्यक्त प्रकृति में लीन हो जाती है। इस प्रकार प्रकृति में वर्तन, परिवर्तन तथा विपरिवर्तन ब्रह्म की निजशक्ति की ही अध्यक्षता में होती है।

इसी योगमाया का एक निम्न स्वरूप माया है। मा अर्थात् जो, या अर्थात् है। तात्पर्य यह है कि 'जो' है वह ''है'' जैसा भासमान होता है। यथा मृग मरीचिका, सीप में चांदी, रज्जु में सर्प की प्रतीति होती है।

एक वस्तु की दूसरी वस्तु में मिथ्या प्रतीति 'विवर्त' कहलाती है। इस प्रतीति को उत्पन्न करने वाला तत्व 'माया' है। यह माया अपनी आवरण और विक्षेप दो शक्तियों द्वारा ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप को ढक करके जगत की सृष्टि करती है।

विक्षेप शक्ति– जिस प्रकार आकाश में चंचल वायु उत्पन्न होती है। उसी प्रकार उस ब्रह्म में मूल माया प्रतीत होती है। परन्तु वायु की चंचलता के कारण आकाश की निश्चितता भंग नहीं होती है। उसी प्रकार माया के कारण ब्रह्म की निर्गुणता, निराकारण में कोई अन्तर नहीं आता है। माया का स्वरूप वायु की तरह ही है। वायु भासती तो है, दिखाई नहीं देती है। वायु को सत्य तो कह सकते हैं, पर दिखाई नहीं देती है। उसी प्रकार माया भासती तो है, पर अहंता, ममता के कारण दिखाई नहीं देती है।

आवरण शक्ति– जिस प्रकार वायु के कारण आकाश में धूल आदि उड़ती दिखाई देती है। उसी प्रकार माया के कारण यह संसार दिखाई देता है। जिस प्रकार आकाश में अचानक बादल आ जाते हैं। उसी प्रकार माया (अविद्या) के संयोग से यह संसार दिखाई देता है। यही कारण है कि निर्गुण ब्रह्म भी माया (अविद्या) के कारण सगुण दिखाई देता है। वस्तुतः संसार है नहीं। यह मात्र भासमान है।

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्त मध्यानि भारत।
अव्यक्त निधनान्येव तत्र का परिदेवता।।

गीता 2/28

अर्थात् जिस वस्तु का अस्तित्व आदि और अन्त में नहीं होता है। वह वस्तु मध्य में कैसे हो सकती है? अर्थात् नहीं हो सकती है। इसी कारण यह संसार, माता, पिता, बन्धु के शरीर आदि में नहीं थे और अन्त में भी नहीं रहेंगे। केवल मध्य में अविद्या के कारण भासमान हो रहे हैं। वास्तव में यह संसार है ही नहीं केवल माया के कारण ही मृगमरीचिका की भांति सत्य प्रतीत हो

रहा है।

इस माया की निवृत्ति के लिये भगवान श्रीकृष्ण जी ने सरल उपाय बताया है:-

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्तेमायामेतां तरन्ति ते।।

गीता 7/14

योगी सातवलेकर के मतानुसार माया का अर्थ कारीगरी अथवा कलाकृति है। परमात्मा ने इस माया द्वारा पंचभूतों की रचना की है। यही उस परमात्मा की कारीगरी है। यह मानव शरीर पंचभूतों का एक संगठन है। जीव ने इस शरीर में अहंता ममता का आरोप कर लिया है। इस कारण इस माया से छूटना कठिन है। मनुष्यों में से जो केवल मेरे ही शरण होते हैं, वे इस माया से तर जाते हैं। क्योंकि उनकी दृष्टि केवल मेरी ही तरफ रहती है। तीनों गुणों की तरफ नहीं, क्योंकि ये तीनों गुण न मेरे में है और न मैं उनमें हूँ। मैं तो निर्लिप्त रहकर सभी कार्य करता हूँ। इस प्रकार जो शरणागत भक्त मेरे स्वरूप को जानते हैं, वे गुणों में नहीं फसते हैं, इस माया से तर जाते हैं। वे भक्त जानते हैं कि मन, बुद्धि, चित्त आदि प्रकृति ही है। प्रकृति से परे मुझ निर्विकार ब्रह्म को जो मनुष्य जान सकता है। वही परमात्मा की शरण लेता है।

● ● ●

भूपेन्द्र 'अंकुश'
जलेसर

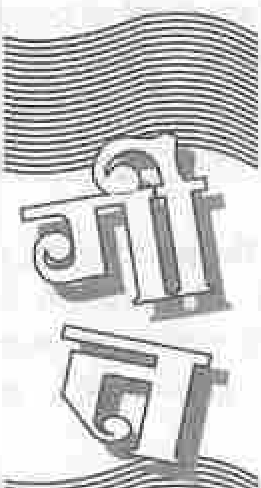

जब तरु लताओं पै पल्लव होगा।
मौसम सुहाना उद्‌भव होगा।।
तब-तब प्रभु श्री रामलाल का उत्सव होगा।। टेक।।
पात अरु कली से डाली बन्दनवार सजायेगी।
हर एक शाख रसालों की नये बौरों से झुक जायेगी
पिक के स्वरों का वैभव होगा- मौसम सुहाना - 1
चैत की किरन की गरमी चेतना जगायेगी
हरी हरी घास मन की वेदना भगायेगी
पग-पग परागों का आसवं होगा-मौसम सुहाना - 2
भोर की पवन में भौरे तितली उड़-उड़ डोलेंगे
जय-जय-जय प्रभुराम लाल की कुंज-कुंज में बोलेंगे
जयघोष करता कलरव होगा-मौसम सुहाना - 3
खेत घर खुशी से झूमेंगे जौ सरसों के दानों पै।
ढोलक चंग मजीरा बाजें फाग-राग की तानों पै।।
हिरदय-सरोवर लबालब होगा- मौसम सुहाना - 4
योग की कमी से दुर्बल मानव-मन दुखिदायेंगे।
भगवन्ती की कुक्षा से अवतारी प्रभु आ जायेंगे
बीमारियों का पराभव होगा-मौसम सुहाना - 5

स्वधर्म में मरना श्रेयस्कर

जय नारायण राय

श्री कृष्ण भगवान अर्जुन को स्वधर्म के आधार पर युद्ध करने का आदेश देते हैं। अर्जुन के लिए युद्ध ही स्वभाव प्राप्त या सहज कर्म है, वही उसका स्वधर्म है। यदि कोई व्यक्ति शिक्षक है, तो उसका स्वभाव प्राप्त कर्म है अध्ययन–अध्यापन। व्यापारी का सहज कर्म है व्यापार। श्रमिक का सहज कर्म है शारीरिक श्रम। हर प्रकार का कर्म करने वाला व्यक्ति लोक संग्रह हेतु कर्म कर सकता है। अपने–अपने सहज कर्म से न डिगते हुए मनुष्य उसे लोक संग्रहार्थ कैसे बनाए, इसका उपाय नीचे श्लोक से स्पष्ट है :

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः।।

अर्थात् सभी कर्मों को मुझमें समर्पित करते हुए, चित्त को आत्मा में केन्द्रित कर आशारहित, ममतारहित और सन्तापरहित हो युद्ध कर।

उपरोक्त श्लोक में पाँच लक्षण बताये गये हैं, जिनसे युक्त होने पर कर्म लोक संग्रहार्थ बन जाता है।

1. सब कर्मों का सन्यास परमात्मा में करना– कर्ता अपने सम्पूर्ण कर्मों को परमात्मा को इस भाव से समर्पित करे कि इससे प्राप्त होने वाला फल मन ही मन प्रभु को अर्पित है।

2. चित्त को आत्मा में केन्द्रित करना– यदि साधक की आसक्ति देह में बनी रहती है तो यह आसक्ति बन्धनकारी है। साधक का सम्पूर्ण कर्म बिना आसक्ति प्रभु को समर्पित होना चाहिए।

3. आशा रहित– हमारा चित्त आशा के कारण मन से चिपकता है। भविष्य का अधिक विचार ईश्वर के प्रति हमारे समर्पण को शिथिल करता है। निराशा (हताशा) और आशा में अन्तर है। निराशा में देह और मन दोनों अवसन्न हो जाते हैं, दोनों की क्रियाशीलता बाधित हो जाती है, जबकि आशा में मन क्रियाशील रहता है पर देह अवसन्न रहती है। अतः निराशा और आशा का शिकार न होने से बचना है।

4. ममता रहित– यह भाव चित्त को देह से चिपकने से बचायेगा। सारे ममत्व की जड़ है देह। इसलिए श्री कृष्ण भगवान ममतारहित होने का उपदेश देते हैं।

5. सन्ताप रहित– 'क्षोभ' और 'आवेश, ज्वर के दो लक्षण हैं और दोनों ही साधक के कर्म को निस्तेज बना देते हैं। दोनों ही बुद्धि की चंचलता सूचित करते हैं। ज्वर की ऐसी

स्थिति में बुद्धि उचित अनुचित का विचार नहीं कर पाती। यदि साधक आवेश और क्षोभ से रहित हों, भूत और भविष्य की चिन्ता छोड़ वर्तमान के कर्म में भगवत्समर्पित भाव से अपने चित्त को निविष्ट करे, तो वह साधक देह और मन की आसक्ति से ऊपर उठ आत्मतत्व में लीन होगा और तब साधक सही अर्थों में अपने सम्पूर्ण कर्मों को फल सहित सन्यास परमात्मा में करने में समर्थ होगा।

श्री कृष्ण भगवान ने गीता के तीसरे अध्याय के श्लोक 31 से 34 में उपरोक्त श्लोक के निहित अर्थ के सन्दर्भ में अर्जुन को परमात्मा में श्रद्धा और अनसूया (दोषदृष्टि न रखना) वृत्ति रखने का उपदेश देते हैं तथा यह बतलाते हैं कि जो साधक परमात्मा के कथन में दोष निकालते हैं, वे सभी ज्ञानों में भ्रान्त है, अविवेकी है और फलस्वरूप वे विनाश को प्राप्त होते हैं। अर्जुन श्री कृष्ण भगवान को एक परम आत्मीय और अत्यन्त स्नेही सखा के रूप में मानता है किंतु अर्जुन के भीतर एक ऐसी वृत्ति काम कर रही है, जो श्री कृष्ण भवगान के वचनों के प्रति पूरी तरह से आस्था नहीं जमने देती। अर्जुन के मनोवृत्ति को अन्तर्या श्री कृष्ण भगवान भांप कर कहते हैं कि ज्ञानी पुरुष भी अपने निज स्वभाव के अनुरूप चेष्टा करता है। कोई अपने को बलपूर्वक किसी काम के करने से रोकना चाहे तो नहीं कर पाता, क्योंकि स्वभाव आड़े आता है। श्री कृष्ण भगवान ने निग्रह की प्रयोजनीयता बतायी। जो साधक दृढ़प्रतिज्ञ है और स्वभाव के बली होने पर भी उस पर हावी होने का संकल्प करते हैं, उनके लिए संकल्प फलप्रसू होता है बशर्ते राग और द्वेष पर विजय पा ले।

माँ का कर्तव्य

अंशुमानदेव मालवीय

भारतीय संस्कृति में माँ की सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका मानी गयी है। माँ हमारे चरित्र निर्माण में बहुत सहायक होती है। यदि हम किसी महान सन्त, साधु या महात्मा के जीवन चरित्र को देखें तो ज्ञात होगा कि इनके महान बनने में व दिव्य जीवन प्राप्त करने में इनकी माँ की अहम भूमिका रही है। आज के इस भौतिकवादी युग में जहाँ लोग आधुनिकता को विशेष महत्व दे रहे हैं, धर्म को छोड़कर धन के पीछे भाग रहे हैं और भौतिक सुख को जुटाकर उसी में सुख का अनुभव कर रहे हैं, वहीं वे अपने बच्चों को सही संस्कार नहीं दे पा रहे हैं। परिणामस्वरूप इसके दुष्परिणाम भयावह रूप में हमारे सामने आते जा रहे हैं।

आज के अधिकांश आधुनिक माता–पिता अपने बच्चों के लालन–पालन के रूप में उन्हें साज–संवार कर स्कूल भेजने को अपना कर्तव्य मान रहे हैं। और बच्चों में संस्कार डालने की ओर उनका कतई ध्यान नहीं है। जबकि अपने बच्चों को प्रत्येक क्षण उत्तम संस्कार देना प्रत्येक माता–पिता का प्रथम कर्तव्य है। अपने बच्चों की बुरी आदतों को निरुत्साहित करना और अच्छे कर्तव्य एवं व्यवहार के लिए उन्हें उत्साहित करना अति आवश्यक है, ताकि वे संस्कारवान बनें और एक श्रेष्ठ व उत्तरदायी नागरिक के रूप में उनका विकास हो। माँ चूँकि बच्चे की प्रथम गुरु मानी गयी है, अतः उसे अपने बच्चे की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। वह जैसे भी संस्कार बच्चे को देगी वह बालक वैसा ही व्यवहार करेगा।

बहुत पुरानी बात है। एक डाकू था, जिसके नाम की चर्चा दूर–दूर थी। एक दिन वह मन्दिर से घण्टा चुराते पकड़ा गया। पकड़े जाने पर उसे पंचों के सम्मुख उपस्थित किया गया। पंचों ने इस असामान्य अपराध के लिए उसे फाँसी की सजा सुनायी। फाँसी की सजा सुनकर डाकू ने कहा – सरपंच जी मैं सजा पाने से पहले अपनी माँ से मिलना चाहता हूँ। तब उसकी माँ को बुलवाया गया। डाकू अपनी माँ के पास गया और उसके कान के पास अपना मुँह ले जाकर उसका कान काट लिया। उसकी माँ बहुत तेज चिल्लायी। तब पंचों ने पूछा कि तुमने ऐसा क्यों किया? तब डाकू बोला – सरपंच जी! जब मैं छोटा था तो स्कूल में पढ़ता था। मैंने एक बार अपने एक सहपाठी की पैंसिल चुरा ली। घर आने पर माँ ने मुझे डाँट लगाने की बजाय मुझे शबासी दी। वह प्रसन्न थी। बाद में मैं नित्य चोरी करता चला गया। मेरी यही माँ मुझे प्रोत्साहित करती चली गयी और आज मैं जग जाहिर डाकू बन गया। इस स्थिति तक पहुँचाने में मेरी माँ का ही हाथ है, इसीलिए मैंने इसे यह सजा दी है।

आज राष्ट्र निर्माण में महात्मा गाँधी और पं. मदनमोहन मालवीय सरीखे संस्कारवान नेताओं की आवश्यकता है। निश्चित ही इनकी माताओं ने इन्हें ऐसे संस्कार दिये जिसके कारण ये नेता राष्ट्रकार्य को ही अपने जीवन का एकमात्र ध्येय मानने लगे। ऐसी मातायें धन्य हैं, जिन्होंने ऐसे सपूतों को जन्म दिया। आइये हम भी अपने बालकों को संस्कारक्षम बनाने का संकल्प लें।

अपने लिए नहीं, भगवान के लिए !

यहाँ सृजन करने के लिए यदि कुछ है तो वह विज्ञान का ही सृजन है। अर्थात् इस पृथिवी पर, केवल मन-बुद्धि और प्राण में ही नहीं, प्रत्युत शरीर में और इस जड़ प्रकृति में भी भगवत्सत्ता का अवतरण कराना है। हमारा उद्देश्य अहंभाव के फैलाव को रोकने वाले प्रतिबन्धों को हटाना अथवा मानव मन की कल्पनाओं या अहंकारगत प्राणवासनाओं की स्वार्थपूर्ति के लिए खुला मैदान छोड़ देना और बेरोक आश्रय प्रदान करना नहीं है। यहाँ कोई भी इसलिए नहीं है कि 'जो मन भावे करे' या किसी ऐसे संसार को रचे जिसमें हम लोग अपनी मनमानी कर सकें; यहाँ हमें तो वही करना है जो भगवान् चाहते हैं और ऐसा ही संसार रचना है जिसमें भगवदिच्छा अन्तर्निहित सत्य को प्रकट करे-वह भगवदिच्छा किसी मानव-अज्ञान से विकृत न हो। विज्ञान के इस योग में साधक को जो काम करना होता है वह कोई उसका अपना काम नहीं है जिस पर वह अपनी शर्तें भी लाद सके, प्रत्युत वह कर्म भगवान् का है और उसे वह कर्म भगवन्निर्दिष्ट नियमों के अनुसार ही करना होगा। हमारा योग हमारे लिए नहीं है, बल्कि भगवान के लिए है। हम जो कुछ व्यक्त करना चाहते हैं वह हमारा वैयक्तिक व्यक्तीकरण नहीं है - सर्वतन्त्रस्वतन्त्र, सर्वबन्धविनिर्मुक्त वैयक्तिक अहंकार का भी व्यक्तिकरण नहीं है; यह स्वयं भगवान का व्यक्त होना है। हमारी मुक्ति, हमारी पूर्णकामता और हमारी परिपूर्णता तो भगवान के व्यक्त होने का ही एक परिणाम और अंगमात्र है और सो भी किसी अहंभाव से नहीं, न किसी अहंता-ममता से निकले स्वार्थ के लिए। यह मुक्ति, पूर्णकामता, परिपूर्णता भी हमारे अपने लिये नहीं, भगवान के लिए है!

– महर्षि अरविन्द

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सधौई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ____________________

____

____

आसीनो दूरं व्रजति शयनो याति सर्वतः।
कस्तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति ॥

(कठोपनिषद् 1/21)

परब्रह्म परमात्मा अचिन्त्यशक्ति हैं और विरुद्ध धर्मों के आश्रय हैं। एक ही समय में उनमें विरुद्ध धर्मों की लीला होती है। इसी से वे एक साथ सूक्ष्म से सूक्ष्म और महान बताये गये हैं। वे परमेश्वर अपने नित्य परमधाम में विराजमान रहते हुए ही भक्ताधीनतावश उनकी पुकार सुनते ही दूर से दूर चले जाते हैं। परमधाम में निवास करने वाले पार्षद भक्तों की दृष्टि में वहाँ शयन करते हुए ही वे सब ओर चलते रहते हैं। अथवा वे परमात्मा सदा-सर्वदा सर्वत्र स्थित हैं। वे सर्वत्र सब रूपों में नित्य अपनी महिमा में स्थित हैं।

संस्थापक :– योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. रामलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सधौई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : आचार्य प्र. (डॉ.) रामलाल शर्मा